कथाकार

जयशंकर प्रसाद

लेखक

हरस्वरूप माथुर एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

साहित्य संस्थान

कानपुर

प्रकाशक
साहित्य संस्थान
वाजपेयी प्रेस, माल रोड
कानपुर

प्रथमावृत्ति : फरवरी, १९५५
मूल्य २)

विक्रेता
साहित्य निकेतन
कानपुर

मुद्रक
वाजपेयी प्रेस
कानपुर

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य के आधुनिक-काल में जिन साहित्यांगों की आशातीत उन्नति हुई है, उनमें उपन्यास और कहानियाँ मुख्य हैं। कथा-साहित्य के यह दो अंग अनेक साहित्यकारों की विविधरूपसम्पन्न सृजनात्मक-प्रतिभा से परिपुष्ट हुए हैं। हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में जिन व्यक्तियों ने महत्वपूर्ण योग दिया, उनमें जयशंकर प्रसाद का स्थान समादृत है। प्रसाद का कथा-वाङ्मय अल्प होकर भी संवेदन की बड़ी क्षमता रखता है। वह भाव-जगत् के अतिरिक्त वाह्य-जगत् के उन चित्रों का भी संस्पर्श करता है जो जीवन की लघुता की ओर संकेत करते हैं। जीवन की लघुता के प्रति प्रसाद का साहित्यिक दृष्टिपात व्यापक नहीं है, पर वह जिस सूक्ष्म व्यञ्जना-शक्ति का परिचय देता है, वह कथाकार की निजी विशेषता है। हमारे साहित्य के मौलिक स्थायी-कृतित्व में प्रसाद की यह देन अविस्मरणीय है।

प्रसाद के कथा-साहित्य के महत्व से परिचित होने पर भी इसके व्यवस्थित-अध्ययन का प्रयत्न नहीं हुआ। जो लिखा गया है वह निबन्धों के रूप में है या चलती आलोचनाएँ। इनसे प्रसाद के कथा-साहित्य के अध्येता को विशेष सहायता नहीं मिलती। प्रस्तुत आलोचना इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न है। इसमें प्रसाद के कथा-साहित्य की आलोचना के साथ उनके इतविषयक कृतित्व का विकास-अध्ययन भी किया गया है। यदि इससे प्रसाद के अध्येताओं का कार्य कुछ भी सरल हो सका तो मुझे अपने श्रम पर सन्तोष होगा।

करावी खाना, कानपुर
२८—१—५५

— हरस्वरूप माथुर

प्रकाशकीय

हमारी योजना का पहला प्रकाशन 'कथाकार जयशंकर प्रसाद' आपके सम्मुख है। प्रस्तुत आलोचना के सम्बन्ध में आपका मत जानने के हम इच्छुक हैं जिससे कि इस वर्ष के आगामी प्रकाशन 'नाट्यकार जयशंकर प्रसाद' और 'कविवर जयशंकर प्रसाद' आपकी सम्मति के अनुसार हों।

'कथाकार जयशंकर प्रसाद' के लेखक का कथा-साहित्य विषयक अध्ययन व्यापक है और उनका मौलिक कथा-कृतित्व में योग भी है। इसीलिए जिस सहानुभूतिपूर्ण आलोच्य-दृष्टि का परिचय उन्होंने 'कथाकार जयशंकर प्रसाद' में दिया है, वह कम प्राप्त होता है। हमारा यह विश्वास है कि प्रसाद के कथा-वाङ्मय के अध्ययन का इतना व्यवस्थित प्रयत्न दूसरा नहीं हुआ है। कलेवर वृद्धि के लिए अनावश्यक विस्तारवृत्ति की इसमें उपेक्षा है, पर कोई भी आवश्यक उपकरण नहीं छूटने पाया है। आशा है प्रस्तुत आलोचना से प्रसाद के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होगा।

— प्रकाशक

क्रम

कथाकार

जयशंकर प्रसाद

कथा-साहित्य परम्परा और 'प्रसाद'

भारतवर्ष में कथा-कहानियों की परम्परा बहुत प्राचीन है। यहाँ के प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थों में कहानियाँ प्राप्त हैं। हिन्दी-साहित्य में भी पद्य मय कहानियाँ वीर-काव्य और प्रेमाख्यानक काव्य में उपलब्ध हैं। उनमें कहानी अभिप्रेत लक्ष्यसिद्धि का प्रयोजन है, किन्तु कथा-तत्व भी नगण्य नहीं है। पर आधुनिक युग में कथा-साहित्य का जो रूप मान्य है उसका उद्भव और विकास अधिक पुराना नहीं कहा जा सकता। हिन्दी कथा-साहित्य हिन्दी गद्य के विकास से अनुस्यूत है। गद्य के साथ उसके विकास का प्रगाढ़ सम्बन्ध उन लम्बी कहानियों में दृष्टिगत होता है जिनको हिन्दी गद्य की प्रारम्भिक पुस्तकों में माना जाता है। हमारा अभिप्राय इंशाअल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' से है। इन प्रारम्भिक कहानियों से ही हिन्दी कथा-वाङ्मय का आरम्भ माना जाता है।

इस प्रकार हिन्दी कथा-साहित्य के विकास का प्रथम चरण उन्नीसवीं शताब्दी के आस-पास पड़ता है। इन कथा-पुस्तकों में भाषा-निर्माण कार्य की ओर लेखकों का ध्यान कथा की अपेक्षा अधिक था। इंशाअल्लाखाँ के शब्दों में हमारा मंतव्य स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने लिखा था—'एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिये जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली का पुट न मिले; तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ इसके बीच में न हो.........।' सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' भी हिन्दी भाषा

सिखाने के उद्देश्य से लिखा गया था। भाषा की ओर लेखकों का यह आग्रह स्वाभाविक था क्योंकि वह खड़ी बोली गद्य के निर्माण का युग था जिसमें अन्तर्वस्तु की अपेक्षा उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम की पुष्टि पहले अपेक्षित थी।

हिन्दी के आदि उपन्यासों में लाला श्रीनिवासदास (१८५१-१८८७) का 'परीक्षा गुरु' उल्लेखनीय है। इसके पूर्व कई उपन्यास लिखे जा चुके थे किन्तु आलोचकों ने इस रचना को हिन्दी के प्रथम उपन्यास का गौरव प्रदान किया है। इसके विषय में लालाजी का मत था कि 'अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी।' इसमें विषय की नवीनता की ओर संकेत अवश्य है जो साहित्यिक दृष्टिविस्तार के लिए अभीष्ट था। इसकी कथा लालाजी के सामयिक समाज की है जिसमें यह दिखाया गया है कि एक धनी का पुत्र कुसंगति से किस प्रकार बिगड़ जाता है और सच्चे मित्र की सहायता से किस प्रकार सुधर जाता है। यद्यपि इसकी कथावस्तु एक लघुकथा के उपयुक्त है, पर लेखक के जीवन-अनुभव ने चरित्र-चित्रण के प्रयत्न में उसे सामान्य सफलता अवश्य दी है। नीति और उपदेश की ओर लेखक की प्रबल-प्रवृत्ति के कारण रचना की कलात्मकता को बड़ा आघात पहुँचा है और कृत्रिमता का समावेश हो गया है। आधुनिक उपन्यास-कला के पारखी इसमें त्रुटियाँ दिखाने के साथ यह भी नहीं विस्मरण कर सकते कि प्रारम्भिक रचना में ये दोष अनिवार्य से होते हैं और कालान्तर की रचनाएँ धीरे-धीरे अपने को इनके संसर्ग से मुक्त करती चलती हैं। 'परीक्षा गुरु' की सफलता-असफलता के मतदान से जो बात अधिक महत्वपूर्ण है उसे नहीं भूलना है—यह हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास है।

भारतेन्दु-मण्डल के दूसरे प्रसिद्ध लेखक बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) थे, जिन्होंने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' उपन्यास लिखे। दोनों उपन्यास सोद्देश्य हैं। सद्वृत्ति, सदाचार, चरित्र-बल और नैतिक-विजय आदि आदर्शों के प्रति भट्टजी की निष्ठा

उन्हें उपन्यासकार की अपेक्षा उपदेशक अधिक बना देती है। 'सौ अजान एक सुजान' के अन्त में तो लेखक स्पष्ट शब्दों में उपदेशक बन गया है। इन त्रुटियों के होते हुए भी भट्टजी के उपन्यासों का विकास-अध्ययन की दृष्टि से महत्व है। एक आलोचक ने 'नूतन ब्रह्मचारी' के सम्बन्ध में लिखा है—'दोषों के होते हुए भी उपन्यास कला के विकास में इस कृति का विशेष स्थान है। यथार्थ चित्रण की ओर इसमें काफी झुकाव दिखाई देता है। भाषा पात्रों के अनुकूल गढ़ी गई है। नौकर, दासी, चौकीदार आदि अवधी में बोलते हैं। पुलिस के आदमी उर्दू में। पढ़े-लिखे बाबू लोगों की भाषा में अँग्रेजी का भी पुट रहता है। 'मैं आप लोगों के प्रयोजन को सेकेन्ड करता हूं' इत्यादि। कहीं कहीं पात्र नाटकों की भाँति स्वतः और प्रकाश्य दोनों प्रकार से बातचीत करते हैं। भट्टजी ने अपने उपन्यास को देश-काल की सीमाओं में मजबूती से बाँधा है। उन्होंने पृष्ठभूमि के चित्रण के लिए अवध का भौगोलिक-वर्णन आवश्यक समझा है.........भट्टजी कोरे किताबी विद्वान नहीं थे। स्त्रियों के सूप फटकारने और हाथ नचा कर वाग्बाण बरसाने को उन्होंने उतने ही ध्यान से सुना था जितने ध्यान से मेघदूत पढ़ा था।'

इन्हीं दिनों राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिन्दू' नामक उपन्यास लिखा। डा० शर्मा इसकी समालोचना करते हुए लिखते हैं—'इस पुस्तक की विशेषता इस बात में है कि लेखक ने सेठ-साहूकारों के लड़कों के बनने बिगड़ने की कहानी छोड़ कर एक ऐसी समस्या को अपनी कथावस्तु बनाया है, जिसका सम्बन्ध किसी वर्ग से नहीं, वरन् पूरे समाज से है। हिन्दुओं के बारे में लिखते हुए वे मुसलमानों को नहीं भूले और उनमें साम्प्रदायिक और देशभक्त दोनों प्रकार के मुसलमानों का चित्रण किया है। दो मित्र गोवध बन्द करने के लिए आन्दोलन करते हैं, उनका साथ एक मुसलमान सज्जन भी देते हैं। अन्य कट्टरपंथी मुसलमान षडयन्त्र करके इन लोगों को मार डालना चाहते हैं, और अन्त में दोनों ही ओर के कुछ लोग मारे जाते हैं, यही उसकी कथा है।' कथावस्तु के संगठन और पात्र-योजना

की दृष्टि से 'निःसहाय हिन्दू' निर्दोष रचना नहीं है किन्तु सामाजिकता की दृष्टि से आलोचकों ने इसका महत्व-स्वीकार किया है।

सन् १८८१ के लगभग देवकीनन्दन खत्री के लोकप्रिय उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इनके उपन्यासों ने पाठकों की संख्या बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। यह कहना तो अब पुनरुक्ति मात्र है कि 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' पढ़ने के लिए ही अनेक व्यक्तियों ने हिन्दी सीखी। प्रेमचन्द ने अपने 'उपन्यास' नामक निबन्ध में लिखा है कि देवकीनन्दन खत्री ने अपनी इन प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियों का बीजाकुंर फारसी के 'तिलस्म होसरुबा' से पाया होगा। जो कुछ भी हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पाठकों को 'चन्द्रकान्ता' मौलिक रचना का आनन्द देने में समर्थ हुआ। 'चन्द्रकान्ता' और 'संतति' में राजा, रानियों, राजकुमारों, उनकी प्रेमिकाओं और ऐयारों के क्रिया-कलाप का चित्रण है। कहानी बहुत कुछ इस ढंग की है—राजकुमार का राजकुमारी पर मोहित होना, उसे पाने का प्रयत्न करना और अनेक विघ्न-बाधाओं को दूर करके उसे प्राप्त करना। जन-प्रचलित कथाओं की प्रकृति पर निर्मित ये कथानक दीर्घ-काल-व्यापी कथा परम्परा में एक नई वस्तु सन्निविष्ट करते हैं—तिलस्म का रहस्य। भूगर्भ में छिपे तिलस्मों की अनन्त सृष्टि कर देवकीनन्दन की कल्पना-शक्ति ने अत्यन्त कुतूहलपूर्ण कथा-साहित्य की सृष्टि की। इनके उपन्यासों में नायक-नायिकाओं के कार्य-कलापों की अपेक्षा उनके ऐयारों के कारनामें अधिक ध्यान आकृष्ट करते हैं। तेजसिंह और भूतनाथ ऐयारों के 'करतब' दिखा कर हमें चकित कर देते हैं। ऐयारों के झोलों का आकर्षण तो और भी बढ़ा-चढ़ा है जिनके अन्दर रूप-परिवर्तन का सामान और लखलखा ऐसी आश्चर्यजनक वस्तुएँ रहती हैं। तिलस्मी नेजे और तिलस्मी तलवारें भी अद्भुत हैं।

देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में रोचकता और कुतूहल-तत्व तो यथेष्ट मात्रा में था किन्तु चरित्र-चित्रण आदि मुख्य औपन्यासिक-तत्वों

की ओर दृष्टि नहीं थी। चरित्र लेखक के संकेत पर कठपुतलियों की भाँति काम करते हैं; उनका रंचमात्र भी स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उपन्यासकार एक के उपरान्त दूसरी चमत्कारिक-घटना की सृष्टि करता चलता है। उसका कथानक कल्पनाप्रसूत चमत्कारपूर्ण घटनाओं का घटाटोप है। कुतूहल की वृद्धि में सहायक अतिरंजित और अलौकिक घटनाएँ इतने प्रचुर परिमाण मे हैं कि आधुनिक बुद्धिवादी पाठक को अस्वाभाविकता के कारण अरुचि हो सकती है। जीवन के कुछ सीमित पक्षों के अन्तर्गत देवकीनन्दन की कौतूहलप्रियता और काल्पनिकता ने संभव-असंभव, स्वाभाविक-अस्वाभाविक की चिन्ता न कर यथेष्ट दौड़-धूप की है। इसमें संदेह नहीं कि देवकीनन्दन खत्री की कृतियों ने उपन्यास-प्रेमियों की संख्या बढ़ाई, किन्तु स्थायी साहित्य की वृद्धि नहीं कर सकीं। जिस प्रकार ये रचनाएँ हलकी हैं, उसी प्रकार इनकी भाषा भी चलती हिन्दुस्तानी है।

घटना-प्रधान उपन्यासों की ओर जनरुचि देख कर गोपालराम गहमरी अपने जासूसी उपन्यास लेकर पाठकों के सम्मुख आए। जासूसी उपन्यास वस्तुतः विदेश की देन हैं। इंगलैंड की स्काटलैंड-यार्ड नामक विश्व-विश्रुत पुलिस-संस्था और जासूसों की बुद्धि-चातुरी एवं साहस को लेकर अंग्रेजी भाषा में अनेक अच्छे जासूसी उपन्यास लिखे गये। उनसे प्रभावित होकर हिन्दी में कुछ लेखकों ने इस ओर ध्यान दिया। हिन्दी साहित्य में जासूसी उपन्यासों की सृष्टि में गहमरीजी का अन्यतम स्थान है। इन्होंने 'जासूस' नामक एक पत्र भी निकाला था जिसमें इनके उपन्यास धारावाहिक रूप से छपते थे। यद्यपि जासूसी उपन्यास भी घटना-वैचित्र्य को प्रधानता देते हैं, फिर भी ऐयारी उपन्यासों की अपेक्षा इनके पात्रों का कार्य-व्यापार बुद्धिग्राह्य होता है। उसमें अलौकिकता के लिये स्थान नहीं है। घटना-चमत्कार भी ऐयारी उपन्यासों की भाँति अस्वाभाविक नहीं होता। हाँ संयोग और आकस्मिकता के प्रयोग पर कोई बन्धन नहीं है। गहमरीजी के उपन्यासों में जनसाधारण-द्वारा समझे जाने योग्य भाषा प्रयुक्त

हुई है। आगे चलकर अन्य लेखकों ने भी जासूसी उपन्यासों की रचना में योगदान किया किन्तु हिन्दी जासूसी उपन्यासों में इतद्विषयक अंग्रेजी उपन्यासों का सा रचना-कौशल और प्रभावात्मकता दृष्टिगत नहीं होती।

हिन्दी उपन्यासों के आदि-काल के प्रमुख लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अपने जीवन काल में इन्होंने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे। गोस्वामीजी ने जितने उपन्यास लिखे उतने कदाचित् आज तक हिन्दी में अन्य कोई लेखक नहीं लिख पाया है। आदिकालीन उपन्यासकारों में गोस्वामीजी का विशिष्ट स्थान माना जाता है क्योंकि उन्होंने विषय की दृष्टि से हिन्दी के आने वाले कथाकारों का पथ प्रशस्त किया। इन्होंने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। यह सच है कि वे अपने युग की सीमा में बँधे थे और उन सब दोषों से मुक्त नहीं थे जिन्होंने तत्कालीन रचनाओं में स्थायित्व नहीं आने दिया, तथापि मौलिकता की दृष्टि से इन्हें अपने युग का सबसे बड़ा कथाकार मानना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि देवकीनन्दन अधिक जनप्रिय थे किन्तु नवीनयुग के निर्माण का सूत्रपात किशोरीलाल गोस्वामी ने किया था। यही नहीं, हिन्दी के प्रथम मौलिक-कहानीकार होने का गौरव भी उन्हें ही प्राप्त है। सन् १९०० में उनकी 'इन्दुमती' कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। कहानियों की चर्चा करते समय इस पर विचार किया जायगा किन्तु यहाँ गोस्वामीजी के ऐतिहासिक-महत्व की विवेचना में उसका उल्लेख वांछनीय समझ कर किया गया है।

गोस्वामीजी के ऐतिहासिक महत्व को स्वीकार करने पर भी उन त्रुटियों के प्रति आँख नहीं बन्द की जा सकती जो उनके उपन्यासों में प्राप्त हैं। 'तारा' गोस्वामीजी की ऐतिहासिक-कृति मानी जाती है किन्तु इसमें पात्रों के साथ न तो न्याय किया गया है और न काल-दोष का ध्यान रखा गया है। ऐतिहासिक-उपन्यासों में वासनात्मक चित्रण की ओर कथाकार विशेष प्रवृत्त हैं। 'त्रिवेणी' उनका सामाजिक-उपन्यास है किन्तु लेखक इसमें भी असफल है। उसके पात्र सजीवता रहित हैं और कथा-प्रवाह

नगण्य। उनके प्रथम उपन्यास 'कुसुम कुमारी' (१६०१) पर डाक्टर श्रीकृष्णलाल के विचार देखिए—'यह प्रेरणा रीति कवियों से मिली, जिन्होंने अपने मुक्तक काव्यों के लिये नायिका भेद एक ऐसा विषय चुना जिसका सम्बन्ध मूलरूप से नाटकों से ही था। किशोरीलाल स्वयं उसी परम्परा के कवि थे, उन्होंने नायिका-भेद तथा अन्य रीति साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। इसलिए जब वे उपन्यास लिखने बैठे तब उन्हें केवल एक सुसंगत प्रेम-कहानी की कल्पना करनी पड़ी, और उसमें उन्होंने प्राचीन कवियों की परम्परा के अनुसार प्रेम-सम्बन्धी विविध प्रसंगों को यथावसर अनेक अध्यायों में गद्यात्मक भाषा में जड़ दिया। उनकी 'तारा' 'अँगूठी का नगीना' तथा अन्य उपन्यास हर्ष और राजशेखर के संस्कृत प्रेम-नाटकों के स्मरण दिलाते हैं। परम्परागत प्रेम-अभिसार, मान, परिहास इत्यादि इसमें भरे पड़े हैं।' गोस्वामीजी अपने उपन्यासों में चरित्र-चित्रण और समाज-दर्शन के प्रयत्न में प्रायः असफल रहे हैं जब कि गन्दे वासनात्मक चित्रण की ओर उनकी प्रवृत्ति को प्रबलता अनेक स्थलों में दृष्टिगत होती है। उनकी वैयक्तिक रुचि-अरुचि और मानसिक-गठन के कारण उनके संकुचित दृष्टिकोण ने भी उनकी रचनाओं की कलात्मकता नष्ट कर दी है। श्री जनार्दन झा 'द्विज' ने इनकी आलोचना करते हुए बड़े अच्छे ढँग से लिखा है—'उनकी रचना में साहित्यिक-सौंदर्य का अभाव नहीं है किन्तु वह सौंदर्य कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक चटकीला और कुप्रभावोत्पादक हो गया है। उनके रस-संचार की प्रणाली कुछ-कुछ असात्विक भावों और दृश्यों को भी अपने साथ रखती हुई-सी दीख पड़ती है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने मौलिकता के नाते हिन्दी के इस क्षेत्र में बड़ी मुस्तैदी से काम किया और उनमें उपन्यासकार होने की सच्ची क्षमता थी। यह दूसरी बात है कि उस क्षमता को वे बहुत अच्छे ढंग से, बहुत अच्छी रुचि के साथ काम में न ला सके।'

गोस्वामीजी के समय में ही कुछ अन्य लेखक उपन्यास-रचना में प्रवृत्त

थे किन्तु उनकी रचनाओं का विशेष महत्व नहीं है। सन् १८९९ में प्रसिद्ध कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और १९०७ में 'अधखिला फूल' नामक उपन्यास प्रस्तुत किए। दोनों उपन्यास भाषा प्रयोग की दृष्टि से लिखे गये थे, उपन्यास कला की दृष्टि से नहीं। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' तो अपने नाम से ही अपने उद्देश्य को स्पष्ट करता है। इसमें उपाध्यायजी ने हिन्दी भाषा के ठेठ शब्दों को प्रयुक्त किया है। मेहता लज्जाराम शर्मा ने भी कुछ उपन्यास लिखे जिनमें, 'धूर्त रसिकलाल' (१८९९) 'हिन्दू गृहस्थ' 'बिगड़े का सुधार' और 'आदर्श हिन्दू' (१९१५) उल्लेखनीय हैं। ये उपन्यास अपने नाम से ही उद्देश्य-ग्रस्त होने की सूचना देते हैं। शर्माजी के उपन्यासों में नैतिकता, हिन्दू-समाज के पुरातन रूप का उत्कर्ष एवं प्रतिष्ठा अंकित की गई है। उपन्यास के कलात्मक रूप के दर्शन नगण्य हैं। वस्तुतः उपाध्यायजी और शर्माजी को उपन्यासकार मानना भूल होगी। औपन्यासिक प्रतिभा और क्षमता का इनमें सर्वथा अभाव है।

बँगला में भाव-प्रधान उपन्यासों की रचना देख कर हिन्दी में बाबू ब्रजनन्दनसहाय ने इस ओर प्रयत्न किया। उन्होंने 'सौंदर्योपासक' और 'राधाकांत' नामक उपन्यास लिखे। भाव-प्रधान उपन्यासों में भाव-व्यञ्जना के सम्मुख चरित्र-चित्रण ऐसे महत्वपूर्ण तत्व की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। लोकरुचि और उपन्यास कला की कसौटी पर इन रचनाओं का अधिक मूल्य नहीं ठहरता। भाव-प्रधान उपन्यासकारों में ठाकुर जगमोहन सिंह की गणना भी है। इनका 'श्यामा-स्वप्न' उपन्यास उल्लेख्य है। इसमें भी चरित्र-चित्रण की उपेक्षा की गई है।

आदियुगीन हिन्दी उपन्यासों की संख्या कम न थी किन्तु वे साहित्यिक-गरिमा से रिक्त थे। घटना-प्रधान उपन्यासों की प्रधानता थी जिनमें चमत्कार और विषयातिरंजन अस्वाभाविकता की सीमा तक पहुँच गया था। इस उपन्यास-वाङ्मय से कुछ लोगों का मनोरंजन अवश्य हुआ किन्तु स्थायी साहित्य-सृष्टि में सहयोग न मिला और न ये

रचनाएँ साहित्य को अभीष्ट गति दे सकीं। बँगला और मराठी के अनेक औपन्यासिकों की कृतियाँ अनूदित हो हिन्दी में लोकप्रिय हो चुकी थीं और स्वाभाविक था कि लेखकों पर उनका प्रभाव पड़ता। किशोरीलाल गोस्वामी पर बँगला के सामाजिक उपन्यासों का प्रभाव माना जाता है। पर अनुवाद मौलिक रचनाओं का स्थानान्तर नहीं कर सकते। हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में उनका योगदान मानने पर भी अपनी भाषा का मौलिक कथा-वाङ्मय प्रस्तुत आलोचना का अभीष्ट है। आदि-काल के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण ऐसे मुख्य तत्व की उपेक्षा की गई, कथोपकथन और समाज-चित्रण का स्थान गौण रहा। भाषा में भी निश्चित आदर्श न था, शैली भी उसी के अनुरूप थी। एक-दो लेखकों ने लगन और प्रतिभा दिखाई थी किन्तु उनकी वैयक्तिक रुचि-अरुचि ने उनकी रचनाओं का मूल्य नगण्य कर दिया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्व अधिक है, साहित्यिक कम।

साहित्य-क्षेत्र में प्रेमचन्द (१६०४-१६३६) के पदार्पण से हिन्दी कथा-साहित्य में युगान्तर उपस्थित हुआ। प्रेमचन्द आधुनिक उपन्यासों के प्रवर्तक हैं। उनकी रचनाओं का उद्देश्य मनोरंजन मात्र न था, उनका मानव-जीवन और समाज में उपयोग वांछित था। प्रेमचन्द का कथा-साहित्य समस्या-प्रधान है, जिसमें समाज और व्यक्ति की समस्याओं का व्यापक चित्रण किया गया है। विषय की दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने नवीनता का परिचय दिया जहाँ साहित्यिक दृष्टि-विस्तार के लिये बड़ा अवसर था। उन्होंने साहित्य को रूढ़िबद्ध परम्परा से मुक्त किया और आर्त्त-मानवता के जीवन-चित्रण द्वारा कला की सार्थकता अनुभव की। प्रेमचन्द ने स्पष्ट शब्दों में कला को जीवन-शक्ति से अनुप्राणित देखने में विश्वास प्रकट किया। न केवल उपन्यास-साहित्य में, वरन् समस्त हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द ने नवीन और स्वस्थ साहित्यिक परम्परा का प्रवर्तन किया जो समाज की आधारभूत मानवता के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करती है।

प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासों के कलात्मक-विकास का अच्छा दृष्टान्त प्रस्तुत किया। चरित्र-चित्रण, कथोपकथन और भाषा-शैली की दृष्टि से उन्होंने हिन्दी को नई दिशा प्रदान की। प्रेमचन्द ने चरित्र-चित्रण को उपन्यास की आधार-शक्ति मानते हुए लिखा है—'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूं। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल-तत्व है·········उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा इतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा·········।' प्रेमचन्द ने चरित्र-चित्रण में परिस्थितियों का प्रभाव दिखा कर गतिशील पात्र-सृष्टि की। कुछ आदर्शवादी चरित्रों को छोड़कर उनके पात्र मानव-चरित्र की बहुमुखी अन्तर्वृत्तियों का गहरा प्रभाव अंकित कर जाते हैं। उपन्यासों में कथोपकथन के महत्व पर भी उनकी दृष्टि थी। उनके कथोपकथन स्वाभाविकता के अपूर्व उदाहरण हैं। उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचन्द ने जैसी सरल, सरस, सजीव और प्रभावोत्पादक भाषा-शैली की प्रतिष्ठा की वैसी आज तक दूसरा उपन्यासकार नहीं कर पाया है। पूर्ववर्ती उपन्यासों में जिस सहज गतिशील प्रवाह का अभाव दृष्टिगत होता है, वह प्रेमचन्द की कृतियों में नहीं है।

सन् १६०४ के लगभग प्रेमचन्द का लघुकाय उपन्यास 'प्रेमा' प्रकाशित हो चुका था किन्तु १६१४ से १६३६ का युग प्रेमचन्द के साहित्य-सृजन का वास्तविक युग है जिसका आरम्भ 'सेवा सदन' से और अन्त 'गोदान' से होता है। एक साहित्यिक और विचारक के नाते वह अपने युग की प्रवृत्तियों को साहित्यिक-चेतना के संसर्ग में समझते रहे थे। उनके सामयिक युग की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों को उनके साहित्य में पूरी पैठ मिली है। 'प्रतिज्ञा' 'वरदान' 'सेवा सदन' और 'गबन' में प्रेमचन्द ने सामाजिक-समस्याओं और प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात किया है। 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं की समस्या और 'सेवा सदन' में वेश्याओं की समस्या के अतिरिक्त मध्यवर्ग की दैनिक आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण

किया गया है। 'गबन' में समाज की अपेक्षा व्यक्ति की समस्या मुख्य है। रमानाथ का मिथ्या-प्रदर्शन और जालपा का आभूषण-प्रेम जिन विषम परिस्थितियों की सृष्टि करता है, उनका कलात्मक ढंग से चित्रण किया गया है। प्रेमचन्द ने सामयिक आन्दोलनों—विशेष रूप से गाँधीजी के आन्दोलनों को अपने उपन्यासों की विषय-वस्तु बनाया है। 'कर्मभूमि' में राजनीतिक-जीवन का सजीव चित्रण हुआ है। आर्थिक प्रवृत्ति-चित्रण में प्रेमचन्द का ध्यान जमींदार-किसान सम्बन्ध पर विशेष रूप से गया है। यह शोषण का सम्बन्ध था। जमींदारों, अधिकारी-वर्ग और महाजनों के अनवरत शोषण ने तो कृषक-वर्ग की पीठ तोड़ ही दी थी, उस पर आर्थिक मन्दी का संकट उसे और ले बैठता था। देहात में रह कर प्रेमचन्द ने देखा था कि किसान की मृत्यु पर सामन्ती और पूँजीवादी शक्तियाँ जी रही थीं। बेगार, बेदखली, नजराना और लगान के नाम पर सामन्ती-शक्ति के अवशिष्ट भूमिपति निर्दयतापूर्वक कृषक-वर्ग का शोषण कर रहे थे और उधर औद्योगीकरण का विकास उसे पूँजीवाद के शोषण का लक्ष्य बना रहा था। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने दिखाया है कि बढ़ते हुए उद्योग-धन्धों के लिये उसकी भूमि छीनी जा रही थी। इस नोच-खसोट से भी शोषक-वर्ग की इच्छा पूरी न होने पर कृषकों के उत्पीड़न में अधिकारी-वर्ग का सहयोग लिया जाता। चारों ओर से प्रहार सहते-सहते किसान जर्जर हो गया था। उसे मनुष्य लूटता था, नियति रुलाती थी। 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' में प्रेमचन्द ने यही दिखाया है। जीवन का परिश्रम मार, दमन और क्षुधा-पीड़ित पेट की ज्वाला में भस्म हो रहा था। अशिक्षा, रूढ़िवादिता और निर्धनता से जड़ मानवता का जिन क्रूर-तम उपायों से शोषण किया जा रहा था, उसे प्रेमचन्द ने देखा था। साथ ही उन्होंने यह भी देखा था कि कृषक-वर्ग किसान आन्दोलनों के फल-स्वरूप जाग रहा था और अधिकारों के लिए डट कर दमन की शक्तियों का सामना कर रहा था। 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में इतद्विषयक चित्रण हुआ है। जीवन-मृत्यु के संघर्ष में व्यस्त इस मानवता के प्रति प्रेमचन्द

की अपार सहानुभूति थी। उन्होंने अपने उपन्यास-साहित्य में बड़े विस्तार से इस वर्ग के जीवन के चित्र अंकित किए हैं। अपनी कला को दलित मानवता की उद्धार-साधना का माध्यम बना कर प्रेमचन्द ने जागरूक कलाकार के दायित्व का निर्वाह किया।

यहाँ हमारा यह मन्तव्य है कि प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासों की परम्परा में नवीनयुग का सूत्रपात किया और स्थायी-साहित्य को अमूल्य कृतियाँ प्रदान कीं। आदि-कालीन उपन्यासों से विपरीत उनका साहित्य कला का उच्च स्तर प्रस्तुत करता है। वे जीवन के सबसे बड़े कथाकार थे जिन्होंने 'जीवन समझौते पर टिका है' सिद्धान्त के आधार पर यथार्थ और आदर्श के समन्वय का प्रयत्न किया। प्रेमचन्द हिन्दी के सबसे बड़े उपन्यासकार ही नहीं कहानीकार भी हैं। कहानी-साहित्य को उनकी महत्वपूर्ण देन की चर्चा आगे की जायगी।

जयशंकर प्रसाद कविता, नाटक और कहानी के क्षेत्र में यथेष्ट पहले ख्याति पा चुके थे किन्तु उपन्यास रचना में अनेक साल बाद प्रवृत्त हुए। १९२९ में उनका प्रथम उपन्यास 'कंकाल' प्रकाशित हुआ और उसकी मौलिकता एवं अभिनव शैली ने उपन्यासकार के रूप में भी उन्हें प्रतिष्ठित कर दिया। प्रसाद ने कुल ढाई उपन्यास लिखे, किन्तु अब तक हिन्दी उपन्यासों की परम्परा में उनकी विशिष्टता सर्वमान्य है। संख्या की दृष्टि से प्रसाद का पल्ला भारी नहीं है, उनका पल्ला भारी है कथा-साहित्य में मौलिक और स्थायी योगदान के कारण। उनके 'कंकाल' 'तितली' और अपूर्ण 'इरावती' ने हिन्दी उपन्यास-साहित्य को भावात्मक शैली की विशिष्टता से सम्पन्न किया। विषय की दृष्टि से भी इन उपन्यासों की मौलिकता निर्विवाद है।

'कंकाल' में प्रसाद ने हिन्दू-समाज एवं धर्म की निस्सारता पर करारा व्यंग्य किया है। इसमें उन्होंने यह चित्रित किया है कि हमारा सारा का सारा समाज वर्णसंकर है। रक्त-शुद्धि का दावा सारहीन है। धर्म और समाज की दृष्टि में जो बड़े हैं उनकी तुच्छता पग-पग पर

प्रकट होती है और जिन्हें धार्मिक-समाज पतित और पथभ्रष्ट समझता है, महानता उन्हीं के चरण चूमती है। धर्म के पाखण्डमय रूप का चित्रण करने में भी प्रसाद पीछे नहीं रहे हैं। 'कंकाल' की वर्णसंकरता का व्यंग्य इतना तीव्र और गहरा है कि पाठक तिलमिला उठता है। उपन्यास के सब पात्र इसी लक्ष्य-सिद्धि के निमित्त मात्र हैं। उन्होंने हिन्दू समाज के खोखले रूप को अभीष्ट ढँग से प्रकट किया है। इसमें प्रसाद की चिन्ता-धारा बहुत कुछ यथार्थवादी ढँग की है—कम से कम जहाँ समाज की रूढ़िवादिता पर वे व्यंग्य-प्रहार करते हैं। 'कंकाल' की ध्वंसात्मक सृष्टि के विपरीत 'तितली' में प्रसाद ने समाज के रचनात्मक दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। 'तितली' में दो विचार-धाराएँ स्पष्ट अंकित हैं। एक का सम्बन्ध ग्राम के रचनात्मक सुधार से है, दूसरी हिन्दू सम्मिलित परिवार-प्रथा से अनुस्यूत है। 'कंकाल' के जटिल और दुरूह कथानक की अपेक्षा 'तितली' का कथानक सुबोध और सरल है। 'तितली' का समाज 'कंकाल' के समाज की भाँति असाधारण नहीं है और न उसके पात्र 'कंकाल' की पात्र-सृष्टि की भाँति यंत्रचालित हैं। परिस्थितियों का प्रभाव उनके चरित्र-विकास में यथेष्ट सहायक है। ग्राम-जीवन के चित्रण में प्रसाद ने यथार्थवादी दृष्टि से काम लिया है, पर सुधार-चित्रण में उनकी आदर्शवादिता प्रकट है। 'इरावती' प्रसाद का अपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका सम्बन्ध मौर्य-साम्राज्य के पतन-काल से है, जब बृहस्पतिमित्र सिंहासनारूढ़ था और शुङ्ग सेनापति पुष्यमित्र उसका दण्डनायक था। 'इरावती' की विषय-वस्तु प्रसाद की प्रकृति और रुचि के अधिक निकट थी। इसीलिए इस उपन्यास में प्रसाद की बहुमुखी प्रतिभा का अपूर्व समन्वय दृष्टिगत होता है। उनके कवि, नाटककार और कथाकार चित्रमयी भावपूर्ण शैली, कथोपकथन और रोचक वस्तु के सन्धि-स्थल 'इरावती' में कलात्मक रूप से एकत्र हुए हैं।

हिन्दी उपन्यास-परम्परा के उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि संविधान और कला की दृष्टि से आधुनिक युग की कृतियों ने उन

स्तर की रचनात्मक प्रतिभाओं—प्रसाद और प्रेमचन्द—को प्रतिष्ठित किया। कहानी-साहित्य के विकास में भी प्रेमचन्द और प्रसाद का वही महत्व है जो उपन्यासों के विकास में। कथा-साहित्य के सम्पूर्ण-अध्ययन के निमित्त यह आवश्यक है कि कहानियों की परम्परा पर भी प्रकाश डाला जाय। निम्नांकित पंक्तियों में हिन्दी कहानियों के विकास-अध्ययन के साथ प्रसाद की तत्विषयक देन का मूल्यांकन किया गया है।

आधुनिक कहानी का जन्म 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के प्रकाशन से १६०० ई० में होता है। 'सरस्वती' में शेक्सपीयर के कुछ नाटकों के अनुवाद कहानी-रूप में प्रकाशित हुए। साथ ही संस्कृत नाटकों के कहानी रूपान्तर भी छपे। हिन्दी की आधुनिक कहानियों का प्रारम्भिक रूप इन अनुवादित एवं रूपान्तरित रचनाओं में दृष्टिगत होता है। ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दी कहानी जहाँ एक ओर पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर रही थी, वहीं दूसरी ओर संस्कृत से भी प्रभावित हो रही थी। हिन्दी कहानी-साहित्य के प्रारम्भिक संविधान में यह एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति है।

जून, १६०० में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। इसे हिन्दी की सर्व प्रथम आधुनिक कहानी का गौरव प्रदान किया गया है। इसके विषय में डा० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है—'यह पूर्णतया मौलिक कृति नहीं कही जा सकती क्योंकि इस पर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' की छाप बहुत स्पष्ट है, परन्तु इसके लेखक किशोरीलाल गोस्वामी ने इसे पूर्णरूप से भारतीय वातावरण के अनुरूप ही प्रस्तुत किया है। कहानी की नायिका इन्दुमती मिरांडा की ही भाँति अपने पिता के साथ विन्ध्याचल के सघन वन में निवास करती है। उसने भी अपने छोटे से जीवन में केवल अपने पिता को ही देखा और प्यार किया था, कोई दूसरा मनुष्य उसके दृष्टिपथ में नहीं आया था। सहसा एक दिन एक पेड़ के नीचे उसने देखा एक सुन्दर नवयुवक—अजयगढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर—जो पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम

लोदी का काम तमाम कर भाग निकला था और लोदी का एक सेनापति उसका पीछा कर रहा था। उसका घोड़ा मर चुका था और वह भी भूखा-प्यासा पेड़ के नीचे पड़ा था। प्रथम दर्शन में ही दोनों के हृदयों में प्रेम का संचार हो उठता है। इन्दुमती का वृद्ध पिता, जो वास्तव में देवगढ़ का शासक था और इब्राहीम लोदी द्वारा राज्य छिन जाने पर अपनी एक मात्र कन्या को लेकर जंगल में निवास करता था, अंग्रेजी नाटक के प्रास्पेरो की ही भाँति युगल प्रेमी के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए चन्द्रशेखर से कठिन परिश्रम लेता है और स्वयं पहाड़ो के पीछे खड़े होकर नवयुवक हृदयों का प्रेम—संभाषण सुनता है। वृद्ध पिता ने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई इब्राहीम लोदी को मार कर उसके वैर का बदला लेगा उसी से वह अपनी कन्या का विवाह करेगा। चन्द्रशेखर ने अनजाने ही यह प्रतिज्ञा पूरी कर दी थी और उसका प्रेम इन्दुमती के प्रति विशुद्ध और आदर्श था, इसलिए वृद्ध पिता ने युगल-प्रेमियों का विवाह करा दिया और वे सुखपूर्वक अपनी राजधानी में राज्य करने लगे। इस प्रकार 'टेम्पेस्ट' की छाया लेकर एक राजपूत कहानी के आधार पर, हिन्दी की सर्व प्रथम मौलिक कहानी की सृष्टि हुई।'

इसके उपरान्त अनेक अनुवादित, रूपान्तरित तथा मौलिक कहानियाँ 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' में प्रकाशित होती रहीं। डा० श्रीकृष्णलाल का मत है कि १६०० ई० से १६१० तक आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक युग था जब कि कहानी की कोई निश्चित परम्परा न थी और उसके साहित्यिक रूप तथा शैली के सम्बन्ध में कोई निश्चित आदर्श सामने न था। फलत् इस काल की रचनाओं में स्थायित्व खोजना व्यर्थ है। प्रायः टूटी-फूटी भाषा में छन्दबद्ध कहानियों का आधिक्य था जिनमें उपदेश देने की प्रवृत्ति मुख्य थी। जैसा कि हम देख चुके हैं कि प्रारम्भिक उपन्यासों में भी उपदेश देने की भावना भरी रहती थी। अतएव कथा साहित्य के इन दो अंगों में इतविषयक एकत्व तत्कालीन वातावरण का प्रभाव सूचित करता है। 'सरस्वती' के अतिरिक्त 'सुदर्शन' में माधव मिश्र

लगना है। कुछ समय उपरान्त बालिका का विवाह दूसरे पात्र से हो जाता है और लहनासिंह उसे विस्मृत-सा कर देता है। कई वर्षों के उपरान्त लड़ाई में जाने के पहले लहना अपने सूबेदार के घर जाता है। वहाँ उसे ज्ञात होता है कि सूबेदारनी और कोई नहीं, वही बालिका है जिसे वह प्यार करता था। सूबेदारनी लहना को अपने पुत्र और पति की रक्षा का दायित्व देती है। लहनासिंह युद्ध क्षेत्र में अपने प्राण देकर अपना दायित्व निर्वाह और वचन-पालन करता है। डा० श्रीकृष्णलाल इस कहानी की सफलता का 'एक मात्र कारण लहनासिंह का अपूर्व आत्मत्याग और बलिदान' मानते हैं। आश्चर्य है कि डा० लाल ऐसे अच्छी गति-मति के समीक्षक इस अमर कहानी में इससे अधिक और कुछ नहीं पाते। या तो डा० लाल ने चलते ढँग से कहानी पढ़ कर कुछ कह देना पर्याप्त समझा है या वे इसकी एक बहुत बड़ी विशेषता हृदयंगम करने में असमर्थ रहे हैं, अन्यथा लहनासिंह के 'आत्मत्याग और बलिदान' को इस कहानी की सफलता का 'एक मात्र' कारण न कहते। इस कहानी की सफलता का मुख्य कारण दूसरा है—वह है आदि से अन्त तक यथार्थवादी कथा-शैली का सम्पूर्ण निर्वाह। वर्णन में, कथोपकथन में, पञ्जाबी-संस्कृति की झलक में—सर्वत्र यथार्थ अंकन की प्रवृत्ति हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। यहाँ तक कि दाढ़ियों वाले घरबारी सिखों का लुच्चों का गीत गाने का उल्लेख भी आवश्यक समझा गया है। यह यथार्थवादी चित्रण प्रणाली प्रभावोत्पादक सजीव और आकर्षक वर्णन-शैली के प्रयोग से और भी निखर आई है। कहानी की सफलता का यह मुख्य कारण भूल जाना अधूरी आलोचना करना है।

गुलेरीजी के समय से ही प्रसाद भी कहानियाँ लिखने लगे थे। पर प्रसाद के कहानी-साहित्य का हिन्दी कहानी-परम्परा में योगदान आँकने के पूर्व उनके समसामयिक लेखकों की चर्चा आवश्यक है जिनका हिन्दी-कहानियों में महत्वपूर्ण स्थान है। ये विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' सुदर्शन और प्रेमचन्द थे। प्रसाद के समकालीन कथाकारों में इन

तीन व्यक्तियों ने विशेष ख्याति अर्जित की।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने अनेक कहानियाँ लिखीं जिनमें 'ताई' सर्वाधिक लोकप्रिय हुई। इनकी कहानियों में प्रसाद गुण सर्वत्र लक्षित होता है। 'ताई' का मनोवैज्ञानिक आधार विशेष उल्लेखनीय है, किन्तु कौशिक जी की प्रारम्भिक कहानियाँ प्रायः घटना-प्रधान होती हैं। कथानक के विकास में संयोग और आकस्मिक घटनाओं से यथेष्ट सहायता ली जाती है। उनकी 'पावन-पतित' कहानी इसका उदाहरण है। इसीलिए 'कौशिक' जी की कहानियाँ कौतूहल की तृप्ति करने पर भी कला की दृष्टि से ऊँचे दर्जे की नहीं कही जा सकतीं। पर उनके पक्ष में यह अवश्य कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी कहानियों के पैर यथार्थ की ठोस भूमि पर जमाए थे। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'उद्धार' में यथार्थवादी वातावरण कहानी को प्रभावात्मक बनाने में अपूर्व ढंग से प्रयुक्त हुआ है।

'सुदर्शन' जी की कहानियाँ भी प्रसादगुणसम्पन्न हैं। प्रसाद के समकालीन लेखकों में उनका स्थान भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखीं—ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रेमकथाएँ आदि। ऐतिहासिक कहानियों में 'न्याय मंत्री' और सामाजिक प्रेमकथा में 'कवि की स्त्री' ने विशेष ख्याति प्राप्त की। 'कवि की स्त्री' में शैली-प्रयोग भी किया गया है। तीन पात्र आप-बीती के रूप में कहानी पूर्ण करते हैं। प्रयोग में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। चरित्र के पक्ष-विशेष की झलक दिखाने वाली कहानियों में उनकी 'हार की जीत' बहुत लोकप्रिय हुई। इसमें बाबा भारती की उदारवृत्ति कलात्मक ढंग से चित्रित की गई है। इस पर आदर्शवाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। पर इससे सजीवता कम नहीं होती है। यही इसकी विशेषता है।

'सुदर्शन' ने कुछ अन्य प्रकार की कहानियाँ भी लिखीं जिनमें मानव-जीवन और इतिहास के चिरंतन सत्यों की व्यञ्जना की गई है। उनकी 'कमल की बेटी' 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' और 'एथेन्स का सत्यार्थी' कहानियों में मानव-जीवन के कुछ महान् और चिरंतन सत्यों की व्यञ्जना

की आख्यायिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। साथ ही बंग महिला, पार्वती-नन्दन और उदयनारायण बाजपेयी इत्यादि बँगला, फ्रेंच और अंग्रेजी भाषा से कहानियों का भावानुवाद प्रस्तुत कर रहे थे। १९०९-१९१० में वृन्दावनलाल ने 'राखी बन्द भाई' एवं 'तातार और एक वीर राजपूत' नामक कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित कराईं। हिन्दी की ऐतिहासिक कहानियों की परम्परा का प्रारम्भ इन कहानियों से ही होता है। इस प्रयोगात्मक युग में अधिकांश कहानियाँ मनोरंजन और शिक्षा के उद्देश्य से लिखी गईं। पर इन्हीं प्रयोगों में हिन्दी की आधुनिक कहानियों के रूप निर्माण का कार्य हो रहा था।

सन् १९११ में काशी से प्रकाशित 'इन्दु' ने हिन्दी कहानियों को अविच्छिन्न परम्परा स्थापित की। प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' १९११ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। 'ग्राम' को यथार्थोन्मुख कहानी कहा जा सकता है। कुछ समालोचक इसे हिन्दी की प्रथम यथार्थवादी कहानी मानते हैं, पर इसके पूर्व मई, १९०७ में बंग महिला की 'दुलाईवाली' नामक कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हो चुकी थी जिसमें यथार्थ-चित्रण का प्रयत्न उल्लेखनीय है। प्रसाद की एक अन्य कहानी 'रसिया बालम' 'इन्दु' में १९१२ में प्रकाशित हुई। इसमें उनकी नाटकीय प्रतिभा और कवि-हृदय का समन्वय हुआ है। इसकी प्रवृत्ति 'ग्राम' से सर्वथा पृथक है। इसे प्रसाद की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कहानियों का पूर्व रूप माना जा सकता है। १९११ में 'भारत मित्र' में गुलेरीजी की प्रथम कहानी 'सुख-मय जीवन' प्रकाशित हुई।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि हिन्दी में कहानियों के प्रचार और विकास में पत्रिकाओं का विशेष हाथ था। वस्तुतः उस समय की प्रायः सब उल्लेखनीय रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित होती थीं। कहानी के क्षेत्र में 'सरस्वती' 'सुदर्शन' 'इन्दु' और 'भारत मित्र' का उल्लेख अनिवार्य है। विशेष रूप से 'इन्दु' और 'सरस्वती' ने हिन्दी की प्रारम्भिक कहानियों की परम्परा स्थापन-कार्य में ऐतिहासिक योगदान दिया।

आधुनिक हिन्दी-कहानियों के प्रारम्भिक लेखकों में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का नाम उल्लेखनीय है। इनकी प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन' में यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति झलकती है। एक आलोचक ने इस कहानी की समीक्षा करते हुए लिखा है—'सुखमय जीवन' में आकस्मिक घटना और संयोग के आधार पर एक मनोरंजक और हास्यपूर्ण परिस्थिति की सृष्टि हुई है। कहानी के नायक 'सुखमय जीवन' नामक ग्रन्थ के अनुभव हीन नवयुवक रचयिता बाबू जयदेवशरण वर्मा बी० ए० अपनी एल-एल० बी० परीक्षा का फल जोहते-जोहते घबरा कर अपना समय काटने के लिए अपने एक सनकी मित्र के घर कालानगर जा रहे हैं कि रास्ते में साइकिल में पंक्चर हो गया और हवा निकल गई। सड़क के धूल-धक्कड़ में साइकिल खींचते हुए अचानक उनकी भेंट एक लड़की से हो गई जो उन्हें अपने घर लिवा ले गई—पान पिलाने, पंक्चर ठीक कराने और साइकिल में हवा भराने। रास्ते में लड़की को नायक का परिचय प्राप्त हुआ और फिर 'सुखमय जीवन' के लेखक का कमला (लड़की का नाम) के वृद्ध पिता के यहाँ बड़ा आदर-सत्कार हुआ। परन्तु अनुभवहीन लेखक का सारा पुस्तक-ज्ञान उस अविवाहिता, शिक्षिता और सुन्दरी कमला के आकर्षण में बह गया और उसने एकान्त में कमला से अपना प्रेम भी प्रकट कर दिया। फिर एक मनोरंजक परिस्थिति उपस्थित हो जाती है और अन्त में कमला और कहानी के नायक का विवाह हो जाता है। इस कहानी में यथार्थ-चित्रण वास्तव में बड़े सुन्दर और स्वाभाविक हैं जिनसे यथार्थवादी वातावरण की सृष्टि होती है।'

गुलेरीजी की प्रसिद्धि का आधार उनकी अमर कहानी 'उसने कहा था' है। इसकी गणना हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में की जाती है और वर्षों के उपरान्त भी उसकी प्रतिष्ठा कम नहीं हुई है। इसमें लहनासिंह के स्वार्थ-त्याग और आत्म-बलिदान का चित्रण पाठक का ध्यान आकृष्ट करने में सफल होता है। कहानी इस प्रकार है—लहनासिंह एक बालिका को ताँगे के नीचे आने से बचाता है। दोनों में परिचय होता है। लहना बालिका से प्रेम करने

पुराण-कथा के रूप में हुई है। डा० लाल इस प्रकार की कहानियों पर लिखते हैं—'उदाहरण के लिए 'कमल की बेटी' कहानी ले लीजिए। भगवान् कृष्ण ने कमल के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसे एक सुन्दरी तरुणी के रूप में परिवर्तित कर दिया। परन्तु अब प्रश्न उठा कि यह सौंदर्य-प्रतिमा रहेगी कहाँ? समुद्र अतल है, हिमालय सदा हिम से आच्छादित रहता है, वनों में सूनापन है, पुष्प वाटिकाओं में ग्रीष्म की जलती हुई लू चलती है और सरोवर में सेवार हैं। इस आदर्श सौंदर्य के लिए संसार में कोई आदर्श स्थल नहीं। भगवान् चिन्ताग्रस्त हो गए। अन्त में उन्होंने देखा कि इस आदर्श सौंदर्य के लिए केवल कवि का हृदय ही उपयुक्त स्थान है। वहाँ हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों की अभ्रभेदी उत्तुंगता है, हिलोलमय महासागर की गंभीरता है, अरण्य का सूनापन और गिरी-कंदराओं का अन्धकार है। उन्होंने कमल की बेटी से कवि के हृदय में रहने को कहा, परन्तु यह सुनते ही वह काँप उठी। भगवान् ने उसको सांत्वना दी :—

'तुम सुन्दरी हो; तुम्हारा आसन कवि का हृदय है। यदि वहाँ हिम है तो सूरज बनकर उसे पिघला दो; यदि वहाँ समुद्र की गहराई है तो तुम मोती बन कर उसे चमका दो। यदि वहाँ एकान्त है तो तुम सुमधुर संगीत आरम्भ कर दो, सन्नाटा टूट जायगा; यदि वहाँ अन्धेरा है तो तुम दीपक बन जाओ, अन्धेरा दूर हो जायगा।'

कमल की बेटी इंकार न कर सकी। वह अब तक वहाँ रहती है। यह एक कलापूर्ण सृष्टि है जिसमें लेखक ने अपनी दिव्य दृष्टि से जीवन के एक चिरंतन-सत्य को प्रत्यक्ष कर कहानी के रूप में प्रगट किया। इस प्रकार की कहानियों का सबसे महत्वपूर्ण अंश इनका कला-रूप है जो पुराण-कथा अथवा रूपक-कथा से बहुत मिलता-जुलता है। लेखक ने कहानी पर सत्यता की एक अमिट छाप लगाने के लिए इसे पुराण-कथा का रूप दिया है।'

प्रसाद के समकालीन लेखकों में महानतम लेखक प्रेमचन्द थे जिनका कथा-साहित्य हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ साहित्य में परिगणित है। उनकी कहा-

नियाँ भी उनके उपन्यासों की भाँति ही अत्यधिक लोकप्रिय हुईं। कुछ आलोचकों का तो यह मत है कि कला की दृष्टि से कहानीकार प्रेमचन्द उपन्यासकार प्रेमचन्द से महान् हैं। जो कुछ भी हो, पर उनकी देन स्थायी है। उन्होंने लगभग तीन सौ मौलिक कहानियाँ लिखीं जो उनकी परिस्थितियों और अल्पायु को देखते हुए एक बहुत बड़ी देन है। 'मानसरोवर' के आठ भागों में उनकी कहानियाँ संगृहीत हैं।

प्रेमचन्द ने हिन्दी में सर्वप्रथम उच्चकोटि की मनोवैज्ञानिक कहानियों की सृष्टि की। आधुनिक कहानियों के विकास में उनको यह महत्वपूर्ण देन है। प्रेमचन्द ने कहानियों की घटना-प्रधान प्रणाली के विपरीत चरित्र-प्रधान प्रणाली को अपनाया जिसमें मानव-मन के भीतरी रहस्यों के उद्घाटन का प्रयत्न सफलतापूर्वक किया गया है। मनुष्य के प्रेम-घृणा, छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-मैत्री आदि मनोभावों के चित्रण में उनकी लेखनी को अदृष्टपूर्व सफलता प्राप्त हुई। जीवन के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण के प्रेमचन्द अद्वितीय कथाकार हैं। उनकी कहानियों में चरित्र की मनोवैज्ञानिक विवृति के अनेक पक्ष दृष्टिगत होते हैं। 'बूढ़ी काकी' 'स्तीफा' 'शंखनाद' 'आत्माराम' 'दुर्गा का मन्दिर' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। उन्होंने कुछ ऐतिहासिक-कहानियाँ भी लिखीं, पर उनकी कला का चरम उत्कर्ष इन चरित्र-प्रधान कहानियों में ही दृष्टिगत होता है। 'मोटेराम शास्त्री' के सत्याग्रह को लेकर उन्होंने हास्य-रस की कहानियाँ भी लिखीं। शिष्ट-संयमित व्यंग्य-हास्य की कहानियों में 'रसिक सम्पादक' का विशिष्ट स्थान है जिसमें एक विधुर सम्पादक की रसिकता का वर्णन है। प्रेमचन्द की कहानियों की विषय-वस्तु बड़ी व्यापक है। यह भारतीय जीवन और समाज के विविध-चित्र प्रस्तुत करती है। उपन्यासों की भाँति ही उनकी कहानियाँ भी जीवन से अनुस्यूत हैं और उसी से प्रेरणा ग्रहण करती हैं।

सन् १६१२ (छाया) से कहानी के क्षेत्र में प्रसाद की प्रतिभा नवीन पत्र का निर्माण कर रही थी जिसमें नाटकीयता और स्वच्छन्द-वादिता का अपूर्व समन्वय था। समकालीन लेखकों में प्रसाद की प्रवृत्ति

और चिन्ताधारा नवीन साहित्यिक परम्परा के विधान में संलग्न थी। अपनी महान् प्रतिभा के अनुरूप ही हिन्दी-कहानियों की नवीन शैली और संविधान की उनकी देन महत्वपूर्ण थी। 'छाया' से लेकर 'इन्द्रजाल' की कहानियों में उनके कथा-विकास की अविच्छिन्न परम्परा से हमारा परिचय होता है।

विषय की दृष्टि से प्रसाद की कहानियों में तीन धाराएँ प्राप्त हैं—(१) ऐतिहासिक (२) प्रेममूलक (३) यथार्थोन्मुख। हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानियों में जयशंकर प्रसाद की कहानियों का विशिष्ट स्थान है। उनमें प्रसाद की नाटकीय और कवि-प्रतिभा का समन्वय हुआ है। ये कहानियाँ ऐतिहासिक वातावरण सृष्टि में बहुत सफल हैं। हमारे नेत्रों के सामने विगत युग का वैभव साकार हो उठता है और ऐतिहासिक पात्र सजीव हो उठते हैं। 'आकाश दीप' 'पुरस्कार' 'ममता' आदि कहानियाँ इस दृष्टि से परिगणेय हैं। अपनी ऐतिहासिक कहानियों द्वारा प्रसाद ने हिन्दी की ऐतिहासिक कहानियों की संख्या वृद्धि भी की और उच्चकोटि का कहानी-साहित्य भी प्रस्तुत किया। हिन्दी में ऐतिहासिक कहानियाँ बहुत कम हैं। इनमें भी प्रसाद की कहानियाँ ही मुख्य हैं। वह हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानीकार हैं। प्रसाद की कहानियों का मुख्य विषय प्रेम है। प्रेम की कोमल अनुभूति कहानियों के सुखांत-दुखांत में सौंदर्य की अन्तःसलिला की भाँति परिव्याप्त है। इन प्रेम-कहानियों में दुखान्त कहानियाँ बड़ी मार्मिक हैं। 'आँधी' और 'आकाशदीप' की नायिकाएँ अतृप्ति से असफल जीवन के दुखांत की साक्षी हैं, जिनकी मर्मव्यथा आँधी और आकाशदीप सी प्रबल और उज्ज्वल है। कथाकार की सच्ची अनुभूति इन कहानियों में प्राण-संचार कर देती है। सुखान्त प्रेमकथाएँ अपेक्षाकृत साधारण प्रभावसम्पन्न हैं। प्रसाद ने कुछ यथार्थोन्मुख कहानियाँ भी लिखी हैं। 'ग्राम' 'बिसाती' 'विराम चिन्ह' 'छोटा जादूगर' इत्यादि कहानियाँ काल्पनिक जीवन के विपरीत यथार्थ का चित्रण करती हैं। इन्हें यहाँ 'यथार्थवादी' न कह कर 'यथार्थोन्मुख' कहा है। कारण यह है

कि जिस अर्थ में 'यथार्थवाद' शब्द का प्रचलन आज है उस अर्थ में प्रसाद की कहानियों को यथार्थवादी नहीं कहा जा सकता। इसीलिये उससे भिन्न अर्थ के प्रयोजन से इन्हें यथार्थोन्मुख कहना ही सुविधाजनक है। यथार्थोन्मुख कहानियों में 'विराम चिन्ह', 'बिड़ी' 'छोटा जादूगर' में प्रसाद की वस्तुगत-कला का अच्छा प्रयोग दृष्टिगत होता है। इन लघुकाय कहानियों में यथेष्ट प्रभावात्मकता है। इनकी शैली भी कवित्वपूर्ण नाटकीय कहानियों की शैली से भिन्न है।

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में वातावरण-सृष्टि का सफल प्रयोग हुआ है। ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण-योजना दृश्य-संविधान की सफलता और प्रभावात्मकता में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यह वातावरण स्वच्छन्दवादी कवि-प्रतिभा-जन्य भावात्मक कथा-शैली के अलंकृत प्रयोग से अभूतपूर्व सौंदर्य-सृष्टि करता है। इस सम्बन्ध में डा० लाल ने ठीक ही लिखा है—'कला की दृष्टि से वातावरण-प्रधान कहानियों का महत्व सबसे अधिक है। इनमें लेखक को कला की काट-छाँट और तराश दिखाने के लिए उपयुक्त अवसर मिलता है ······कवित्वपूर्ण वातावरण कवित्वपूर्ण भावना और नाटकीय तथा आदर्शवादी परिस्थितियों की सृष्टि में जयशंकर 'प्रसाद' अद्वितीय हैं, उनकी कला कवित्वपूर्ण और स्वच्छन्दवादी है।' प्रसाद की यह कला उनकी कहानियों में सौंदर्य-सञ्चार करती है और लेखक की नाटकीय प्रतिभा के योग से अतुलनीय प्रभावसम्पन्नता प्राप्त करती है।

प्रसाद के कथा-साहित्य का आधुनिक हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान है। उपन्यासों की भाँति ही उनकी कहानियाँ भी संख्या में अधिक न होने पर भी कथा-साहित्य में समादृत हैं। अपनी सरस, अलंकृत, काव्योपम गद्य-शैली के कारण प्रसाद के कथा-साहित्य ने एक नवीन साहित्यिक शैली की नींव डाली थी। वह उन्हीं के हाथों प्रौढ़ भी हुई। उनके साहित्य की प्रतिष्ठा में शैली का भी महत्वपूर्ण योग है। साहित्य प्रेमियों के लिए उसमें विशेष आकर्षण है यद्यपि जन-साधारण को वह

दुरूह ज्ञात होती है।

साहित्य-साधना और महिमा में उनके समसामयिक प्रेमचन्द का नाम उनके साथ लिया जाता है। कथा-साहित्य के निर्माण में दोनों व्यक्तियों ने ऐतिहासिक योगदान दिया, किन्तु उनके दृष्टिकोण में बड़ा पार्थक्य था। प्रसाद अतीत-जीवी थे। प्रेमचन्द वर्तमान के जागरूक साहित्यकार थे। पर दोनों हिन्दी कथा-साहित्य की दो पृथक परम्पराओं के प्रवर्तक थे। उनकी कथा-शैली भी विभिन्न दृष्टिकोणों के अनुरूप थी। प्रसाद की शैली का सौन्दर्य प्राचीन साहित्यिक परम्परा से अनुस्यूत है, प्रेमचन्द की विश्लेषणात्मक शैली वैज्ञानिक युग की माँग के अनुकूल है। प्रसाद की अभिजात्य मनोवृत्ति और प्रेमचन्द की जनवादी मनोवृत्ति में बड़ा अन्तर है। वस्तुतः दो विभिन्न संस्कारयुक्त प्राणियों में जैसा अन्तर स्वाभाविक है, वैसा ही इन दो लेखकों में था। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' का 'तितली' पर प्रभाव लक्ष्य करने वाले आलोचकों ने भी कथा-साहित्य को प्रसाद की स्थायी देन के विषय में संशय नहीं प्रकट किया है। साहित्यिक आलोचना की तुलनात्मक प्रणाली के आधार पर कहा जा सकता है—यदि प्रेमचन्द महान कथाकार थे तो प्रसाद विशिष्ट कथाकार थे। उनका भी हिन्दी कथा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रसाद के कथा-साहित्य का कुछ लेखकों पर प्रभाव भी स्वीकार किया जाता है। रायकृष्णदास और व्यास प्रसाद-संस्थान के कहानीकार हैं। मैं अपनी प्रारम्भिक कहानियों—विशेषरूप से 'रत्नमाला' की परम्परा में लिखी गई ऐतिहासिक कहानियों में प्रसाद के कथा-साहित्य से प्रभावित हुआ हूं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कहानीकार भी प्रसाद से प्रभावित दृष्टिगत होते हैं। महान् साहित्यकारों का प्रभाव सामयिक और परवर्ती लेखकों पर पड़ना स्वाभाविक है, पर साहित्यिक-गरिमा और विशिष्ट शैली के कारण प्रसाद के दिखाए पथ पर चलने का साहस कम कथाकार कर पाए हैं।

कंकाल

'कंकाल' (१६२६) द्वारा जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी उपन्यास साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया था। यह व्यंग्यप्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमें हिन्दू धर्म और समाज की निस्सारता का व्यंग्यपूर्ण चित्रण किया गया है। प्रसाद ने 'कंकाल' में बड़े पैमाने पर यह दिखाया है कि सारा का सारा समाज वर्णसंकर है। प्रसाद का मन्तव्य इस कृति में बड़े सशक्त ढँग से व्यक्त हुआ है, यह दूसरी बात है कि इससे कहाँ तक सहमत हुआ जा सकता है। हिन्दू धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं की दुर्बलता के चित्रण में कथाकार ने बड़ी मार्मिक शैली का प्रयोग किया है। 'कंकाल' में प्रथम बार प्रसाद 'वस्तुवाद' की ओर झुकते दिखाई देते हैं। यह उपन्यास प्रसाद की अतीतप्रियता और काल्पनिकता के विपरीत जीवन की वास्तविकता के निकट था। इसीलिए प्रेमचन्द ने भी इसका स्वागत किया था। 'कंकाल' द्वारा प्रसाद ने कथा-साहित्य की भावात्मक शैली का चमत्कार दिखाया और हिन्दी कथा-परम्परा में मौलिक साहित्यिक-कृतित्व द्वारा विशिष्ट योगदान दिया।

कथा

झेलम के किनारे एक बालक और एक बालिका अपने प्रणय के पौधे को अनेक क्रीड़ा-कुतूहल के जल से सींच रहे थे। बालक का नाम रञ्जन और बालिका का किशोरी था। पर अधिक दिन उनका साथ न रह सका। रञ्जन ने जिस महात्मा की कृपा और आशीर्वाद से जन्म लिया था, उसी के

चरणों में वह चढ़ा दिया गया। निष्ठुर माता-पिता ने अन्य सन्तानों के जीवित रहने की आशा में ज्येष्ठ-पुत्र को महात्मा का शिष्य बना दिया। उसका गुरुद्वारे का नाम देवनिरञ्जन पड़ा। उसकी योग्यता देख कर उन्नीस वर्ष की आयु में ही वृद्ध गुरुदेव ने उसे गद्दी का अधिकारी बना दिया। प्रयाग के पर्व-विशेष में रञ्जन और किशोरी का पुनः साक्षात्कार हुआ। तब दोनों युवा थे। किशोरी का विवाह अमृतसर के व्यापारी श्रीचन्द्र से हुआ था। किशोरी का सन्तान-वञ्चित हृदय साधु-सन्यासियों का भक्त हो उठा था। निरञ्जन ने किशोरी को पहचान लिया था किन्तु किशोरी उसे सन्तान का वरदान देने वाला महात्मा ही समझी थी। पूर्व स्मृतियों ने रञ्जन को मोहासक्त करना प्रारम्भ किया। कामना और त्याग का अन्तर्द्वन्द्व उसके मन में हलचल मचाए था। मानसिक अस्थिरता और मन-दौर्बल्य से निवृत्ति पाने के निमित्त वह हरद्वार चला गया किन्तु पुत्राभिलाषिणी किशोरी ने उसका पीछा न छोड़ा। सन्तान-कामना उसे हरद्वार घसीट ले गई। उसका पति व्यवसाय की देख-भाल के निमित्त उसे नौकर के साथ हरद्वार छोड़कर अमृतसर चला गया। किशोरी के संसर्ग में युवा-सन्यासी का कृत्रिम संयम उसका साथ छोड़ने लगा। उसने किशोरी को अपना पूर्व-परिचय दिया। किशोरी अपने बाल-सहचर को इतने बड़े महात्मा के रूप में पाकर चमत्कृत भी हुई और अभिभूत भी। निवृत्ति-पथ का राही प्रवृत्ति की आँधी में बह गया और सन्तान कामना से दुर्बलहृदया किशोरी ने उसका साथ दिया। चतुर नौकर बलदाऊ ने सब कुछ समझ कर श्रीचन्द्र को पत्र लिखा। वह किशोरी को लेने आया। बड़े मान-मनाव के उपरान्त देवनिरञ्जन को पुनः आने का वचन देकर वह पति के साथ चली गई।

हरद्वार प्रवास-काल में किशोरी ने एक समाज-पीड़ित विधवा युवती को आश्रय दिया था। उसके जाने के उपरान्त विधवा रामा वहीं रह गई। हरद्वार जैसे पुण्य-तीर्थ में विधवा को स्थान और आश्रय की कमी थी! पन्द्रह वर्ष उपरान्त रामा सधवा बन कर अपनी पुत्री तारा के

साथ भण्डारीजी के 'आश्रय' में काशी ग्रहण-स्नान के लिए आई। भीड़ में तारा अपने संरक्षकों से छूट गई। एक कुटनी, स्वयंसेवक मंगलदेव को मूर्ख बनाकर, उसे उड़ा ले गई। लखनऊ ले जाकर उसे वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य किया गया। दुष्टों के चंगुल में पड़ कर उसका आहार-व्यवहार तो नष्ट हो चुका था, केवल सर्वनाश होना अवशेष था। इन्हीं दिनों मंगल अपने साथियों के साथ मैच खेलने लखनऊ आया था। एक मित्र के अनुरोध से उसे वेश्यागृह जाना पड़ा। वहाँ उसने काशी के ग्रहण-स्नान में भटकी तारा को वेश्या रूप में देखा। उसने तारा के उद्धार की योजना बनाई। एक दिन अवसर पाकर दोनों वहाँ से चल दिए। रेल में संयोगवश तारा के पिता से भेंट हो गई। मंगल तारा को लेकर उसके पास ही जा रहा था। तारा के पिता को भटकी पुत्री से मिला कर उसने अपने कर्तव्य का अन्त समझा किन्तु कठोरधर्मा पिता ने तारा को अपवित्र और कलंकित मान कर तिरस्कृत किया। वह अपनी पुत्री को 'स्वैरिणी' कहकर लांछित कर जाता है।

हरद्वार आकर तारा मंगल के संरक्षण में रहने लगी। मंगल का कर्तव्य दायित्व में परिणत हो चुका था। आर्य-समाज की पाठशाला में उसे व्यायाम-शिक्षक का काम मिल गया था। तारा और मंगल दोनों के मन में संकल्प-विकल्प चल रहे थे। समय अपने मार्ग चल रहा था। दिन पीछे छूटते जाते थे। तारा गृहस्थी जमाने लगी। आवश्यकता से विवश हो दोनों ने आर्य-समाज का साथ दिया। उनके अनेक आर्य-मित्र बन गए। उन्होंने तारा के उद्धार करने में मंगल के सत्साहस की प्रसंशा की। मंगल तारा का विवाह कराके अपने कर्त्तव्य को पूरा करने की अभिलाषा रखता था। पर तारा मंगल की ओर यथेष्ट आकृष्ट हो चुकी थी। उसका हृदय रसीली कल्पनाओं का अक्षय भंडार बन गया। मंगल का अन्तर्मन भी तारा के प्रति कोमल था। एक रात्रि जब प्रकृति प्रलोभन से सजी थी तब विश्व एक भ्रम बन कर तारा के यौवन की उमंग में डूब गया। उसने मंगल को आत्मसमर्पण कर दिया।

किनारे चली। जंगली फल, गाँवों की भिक्षा, नदी का जल और कन्दराएँ उसकी यात्रा में सहायक थे। वह दिन प्रति दिन आगे बढ़ती जाती थी।

जब हरद्वार से श्रीचन्द्र किशोरी को लिवा ले गया और छः महीने बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तभी से किशोरी के प्रति उसकी घृणा बढ़ गई। वह अपने भाव समाज में तो प्रकट नहीं कर सका पर हृदय में दरार पड़ गई। बहुत सोचने पर श्रीचन्द्र ने स्थिर किया कि किशोरी काशी जाकर अपनी जारज संतान के साथ रहे और उसके खर्च के लिए वह कुछ भेजा करे। पुत्र पाकर किशोरी पति से वञ्चित हुई और काशी के एक सुविस्तृत गृह में रहने का प्रबन्ध हो गया। अमृतसर में यह प्रसिद्ध किया गया कि यहाँ माता-पुत्र का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है।

किशोरी का काशीवास मजे में चलने लगा। देवनिरंजन भी यदा-कदा काशी आ जाता। बाबाजी की पुण्य-भूमि काशी में बड़ी सुख्याति फैली। प्रायः किशोरी के घर ही भण्डार होते। किशोरी की प्रतिष्ठा बढ़ी। वह काशी की एक भद्र महिला गिनी जाने लगी। निरञ्जन अब पूर्णतया प्रवृत्ति मार्ग पर आ चुका था। सन्यासी-जीवन वह पाखण्ड मानने लगा और साकार उपासना में अपनी अपराधी आत्मा की मुक्ति का उपाय देखता। वस्तुतः वह लोक और परलोक—दोनों आकर्षणों से परिचालित था। ठाकुर जी की पूजा भी चलती थी और किशोरी के संसर्ग में गृहस्थ जीवन। प्रकट में तो नहीं, पर विजयचन्द्र पर पुत्र का-सा और किशोरी पर स्त्री का-सा विचार रखने का उसे अभ्यास हो चला।

किशोरी का पुत्र विजय जिस विद्यालय में पढ़ने जाता था उसी में मंगल पाली का अध्ययन कर रहा था। एक दिन उसने बिगड़े घोड़े से विजय की रक्षा की। इस घटना ने दोनों को मित्रता के पाश में बाँध दिया। तारा का परित्याग करके मंगल काशी आ गया था। वह आर्थिक संकट में था। विजय उसे अपने घर ले गया। संयोगवश तारा भी तभी विजय के घर के पास से निकली। लम्बी यात्रा ने उसे दुर्बल कर दिया था, तिस पर भूठी पत्तलों के लोभी भिखमंगों के प्रहार से मूर्छित हो गई।

किशोरी और विनय को उस पर दया आ गई। उसे उन्होंने आश्रय दिया। मंगल को तारा का आगमन ज्ञात नहीं था। उसे भी विजय ने अपने घर रहने के लिए राजी कर लिया था। किशोरी की गृहस्थी में इस प्रकार दो व्यक्ति—तारा और मंगल—बढ़े।

तारा ने किशोरी-परिवार में अपना नाम यमुना बताया। वह किशोरी की आत्मीय दासी और प्रबन्धकारिणी बन गई। एक दिन देवनिरञ्जन ने उसका अपमान कर दिया। उसे देव-मन्दिर में जाने नहीं दिया क्योंकि उसे यमुना (तारा) का कुल-शील, जाति-वर्ण का परिचय नहीं था। तिरस्कृत और अपमानित यमुना रो पड़ी। विजय से धर्म का दंभ देखा न गया। वह विद्रोही विचारों का युवक था जो समाज और धर्म की प्रचलित मान्यताओं में विश्वास नहीं करता। वह यमुना का पक्ष लेकर देवनिरञ्जन से लड़ पड़ा। विवाद बढ़ गया। विजय के व्यंग्य-बाणों से पराभूत हो निरञ्जन इतना उद्विग्न हुआ कि वह तत्काल घर छोड़ कर चला गया। पर विजय प्रसन्न था कि उसने निरञ्जन से यमुना का अच्छा बदला लिया है। यमुना मंगल को देख चुकी थी, पर वह उससे बचकर रहती। उसके सामने आने का यदि अवसर आता तो घूँघट के आवरण में छिप कर आती। भद्र कुटुम्बों के नियम समझने वाले मंगल ने उसकी ओर देखने की चेष्टा भी न की। पर प्रबन्ध-कुशल युवती यमुना के प्रति विजय आकृष्ट होने लगा था। द्वितीय बार प्रेम की शुरुआत

मंगल का एक त्रिकोण-यंत्र, रक्षाकवच विजय के पास था। उसके साथ भूर्जपत्र पर प्राचीनलिपि में कुछ लिखा था। लेख की व्याख्या होने पर ज्ञात हुआ कि यह राज्यवर्धन और चन्द्रलेखा के प्रणय का प्रमाण है। यह त्रिकोण-यन्त्र मंगल के पास देख विजय ने निष्कर्ष निकाला कि कदाचित् चन्द्रलेखा के वंशधरों के पास वंशानुक्रम से यह चला आया हो और मंगल का सम्बन्ध उसी वंश-परम्परा से हो। विजय का यह निष्कर्ष प्रमाणविशिष्ट तो न था पर निराधार भी नहीं। मित्रों ने बात हँसी में उड़ा दी। यन्त्र विजय के पास सुरक्षित रहा।

यमुना मंगल से साक्षात्कार नहीं करना चाहती थी। पर एक दिन दोनों का सामना हो ही गया। गंगा-स्नान के समय दोनों ने एक दूसरे को आमने-सामने खड़े पाया। यमुना के रूप में तारा को देख मंगल चकित और स्तब्ध था। मंगल क्षमाप्रार्थी था किन्तु तारा उसके विश्वास-घात को विस्मृत नहीं कर सकती। उसकी चिरस्थायी वेदना जिस कठोर और कटु व्यवहार से प्रादुर्भूत हुई थी उसके कर्त्ता मंगल के प्रति वह आश्वस्त नहीं हो सकी। उसने दृढ़ स्वर में पारस्परिक परिचय को प्रकट करने से मंगल को वर्जित किया। वह एक दूसरे का कल्याण इसी में समझती है कि वे जान कर भी अनजान बने रहें और अपने-अपने पथ पर चलें। एकान्त में मंगल और यमुना को वार्तालाप करता देख यमुनाप्रेमी विजय मंगल पर संदेह करने लगा। विजय के विश्वास से च्युत हो मंगल उसके आश्रय में न रह सका। वह चला गया। इन्हीं दिनों विजय के ज्वराग्रस्त होने का समाचार पा देवनिरञ्जन लौट आया था। विजय के स्वास्थ्य-लाभ के उपरान्त देवी की मनौती के लिए सब मन्दिर गए। वहाँ विजय ने यमुना के प्रति अपना मनोभाव प्रकट किया। पर यमुना के आत्म-नियन्त्रण ने उसके उत्साह को अधिक बढ़ने न दिया।

कुछ समय बाद किशोरी सपरिवार वृन्दावन गई। वहाँ मंगल से भेंट हुई। मंगल ने एक ऋषिकुल खोला था जिसमें वह दरिद्र हिन्दुओं के लड़कों को पढ़ाता है। भिक्षा-वृत्ति से उनका काम चलता। विजय का मंगल से गहरा मतभेद था। वह प्राचीन निषेधात्मक समाज और धर्म व्यवस्था के प्रचारक मंगल की सेवा-सुधार पद्धति को वर्तमान परिस्थितियों में अनावश्यक और मूर्खतापूर्ण मानता है। पर मंगल के परिश्रम, कष्ट-सहिष्णुता और निष्ठा की प्रसंशा करता है। किशोरी ने मंगल के ऋषि-कुल को सहायता देने का वचन दिया। इधर घंटी नामक एक बालविधवा से किशोरी-परिवार का परिचय हुआ। व्यंग्य, परिहास और निःसंकोच व्यवहार उसका स्वभाव था। विजय उसके सामने अप्रतिभ हो जाता, क्योंकि घंटी की छेड़छाड़ सीमा का अतिक्रमण कर उठती थी। किन्तु

की उसने हत्या की थी। इसी समय यमुना वहाँ आई और उसने निरञ्जन के साथ विजय को घटनास्थल से भगा दिया। पुलिस ने यमुना को अपराधी समझ कर बन्दी कर दिया। घंटी को बाथम पहले ही घटनास्थल से हटा ले गया था। निरञ्जन ने अपनी खोज का समस्त वृत्तान्त किशोरी को लिखा और प्रस्ताव किया कि विजय को भूल जाना ही उचित है क्योंकि उसका जीवन नहीं के बराबर है। पत्र पाकर किशोरी खूब रोई, पर श्रीचन्द्र की सारी कल्पनाओं पर पानी फिर गया। चन्दा के स्थान पर अब वह किशोरी की चापलूसी करने लगा। विजय से हाथ धोकर और निरञ्जन का वृन्दावन ही रहने का निश्चय जान किशोरी ने पति से समझौता करना ही उचित समझा। परिस्थितियों ने श्रीचन्द्र और किशोरी को पुनः मिला दिया। श्रीचन्द्र ने काशी में रहने का निश्चय किया। वस्तुतः संसार अपने-अपने सुख की कल्पना पर खड़ा है। यह भीषण संसार अपने स्वप्न की मधुरिमा से स्वर्ग है। अब किशोरी को विजय की अपेक्षा नहीं, निरञ्जन की भी नहीं। श्रीचन्द्र को न रुपयों के व्यवसाय और न चन्दा की। दोनों ने देखा कि इन सबके बिना हमारा काम चल सकता है, सुख मिल सकता है, फिर झंझट करके क्या होगा। दोनों का पुनर्मिलन प्रौढ़ आशाओं से पूर्ण था। घर-गृहस्थी का प्रबन्ध ठीक कर दोनों देशाटन के लिए निकल पड़े।

घंटी को हत्या स्थल से हटाकर बाथम अपने घर ले गया था। घंटी के प्रति बाथम के व्यवहार को उसकी पत्नी लतिका सन्देह की दृष्टि से देखती थी। पति-पत्नी के पारस्परिक मनोमालिन्य का कारण बनी घंटी। फलत लतिका और बाथम का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। लतिका सरला के साथ गोस्वामी कृष्णशरण के आश्रय में चली गई। घंटी को बपतिस्मा दी गई और वह पादरी के बँगले में रहने लगी। पर अधिक दिन रह न पाई। मानसिक उद्वेग और आघातों से वह पागल हो गई। एक अँधेरी रात को पगली घंटी भाग गई।

हत्या के उपरान्त विजय को देवनिरञ्जन बचा ले गया था पर आश्रय

मिला अछनेरा के जंगल में, दस्युदलपति बदन गूजर के पास। बदन की युवती पुत्री गाला से विजय का परिचय हो गया था। वह विजय को 'नये' कहती थी। वास्तव में डाकुओं के मध्य वह नया व्यक्ति ही था। गाला मुगलानी माँ से उत्पन्न थी जिसकी माँ का सम्बन्ध मुगल-वंश के शाहजादे से था। डाके में बदन को गाला की माँ मिली थी। विभिन्न धर्मानुयायी होने पर भी दोनों में प्रेम था। बदन गाला को प्राणों की भाँति रखता था। बदन युवक विजय और युवती गाला के परिचय से संभावित परिस्थिति के उत्पन्न होने के पूर्व ही विजय को सचेत कर चुका था। फिर भी उसने कहा कि यदि विजय अपने को गाला के योग्य प्रमाणित कर सका तो उसकी पात्रता पर विचार किया जाना संभव है।

लोक-सेवा के निमित्त गोस्वामीजी का आदेश स्वीकार कर मंगल भी जाट-गूजर बालकों को शिक्षित करने के उद्देश्य से इसी ओर आ बसा था। उसने एक पाठशाला खोल रखी थी। गाला का उससे परिचय था। मंगल कभी भिक्षा आदि के लिए उसके पास आता था। मंगल लड़कियों की शिक्षा के लिये एक पाठशाला खोलना चाहता था किन्तु स्त्री अध्यापिका की दुर्लभता से कार्य-प्रारम्भ असंभव था। गाला को पढ़ना-लिखना आता है। वह लड़कियों को पढ़ाने की इच्छा रखती है किन्तु उसका पिता बदन सहमत नहीं होता। पिता-पुत्री में मनमुटाव हो गया। बदन अपने दस्यु-जीवन की अनिश्चित स्थिति के कारण गाला की व्यवस्था करना चाहता है। उसने विजय को गाला के उपयुक्त पात्र समझ कर उससे गाला से विवाह का प्रस्ताव किया। समाज-उपेक्षित विजय अपने को दाम्पत्य-जीवन के अनुपयुक्त समझता है। उस पर संदिग्ध हत्यारा! वह गाला का दायित्व सँभालने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। विजय की उपेक्षा से गाला का नारीत्व अपमान अनुभव करने लगा। उसने अपने आश्रय में पालित विजय से विवाह करने से इन्कार कर दिया। उसने बालिकाओं को पढ़ाने का अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त किया। दुर्दान्त बदन पुत्री के विरोध-भाव को सह न सका। वह गाला को छोड़कर चला

वह घंटी की उपेक्षा करने में असमर्थ था। घंटी ज्वलन्त यौवन की मुग्ध-उन्मत्तता थी। यमुना के आत्मसंयम से प्रताड़ित विजय घंटी की ओर झुक पड़ा। यमुना विजय से निस्वार्थ स्नेह करती है और उसका अमंगल देखना नहीं चाहती। घंटी के संसर्ग से विजय को पृथक करने के लिए वह विजय को समझाती है; तब विजय यमुना से विवाह करने की अपनी मनोवांछा प्रकट करता है। पर मर्माहत यमुना तो विजय से भाई के निस्वार्थ प्रेम की अभिलाषिनी है। यमुना की मनोभावना ज्ञात होने पर विजय का घंटी से सम्बन्ध और भी जटिल होने लगा। वह सबके विरोध के बावजूद भी अपने अदृष्ट पथ पर चल रहा था। यहाँ तक कि वह माँ से भी विद्रोह कर उठा। किशोरी और निरञ्जन उसे छोड़ कर काशी चले गए। यमुना किसी मन्दिर में आश्रय लेने का निश्चय कर घर से चली गई। समाज द्वारा उपेक्षित विजय अपने विद्रोह की अग्नि में जलता घंटी के साथ मथुरा चला गया।

मथुरा आते ही विजय को विपत्ति का सामना करना पड़ा। घंटी को उड़ाने के लिए कुछ गुंडों ने उस पर आक्रमण कर दिया। बाथम नामक ईसाई ने इस विपत्ति से उन्हें बचाया और अपने यहाँ आश्रय दिया। बाथम चित्रों का व्यापारी है और उसने भारतीय रमणी लतिका से विवाह किया है। विजय की चित्रकला मर्मज्ञता और योग्यता तथा अपने व्यवसाय में लाभ उठाने की दृष्टि से भी बाथम ने उसे अतिथि रूप में स्वीकार किया। सरला नामक हिन्दू परिचारिका उनकी देख-रेख करती। सरला पुत्रवंचितमातृहृदय के कारण विजय से आत्मीयता रखने लगी। उससे विजय को ज्ञात हुआ कि किस प्रकार रामदेव नामक व्यक्ति ने सरला के पुत्र को एक दूसरी स्त्री को दे दिया और उस स्त्री की लड़की को गोविन्दी चौबाइन ने पाला। रामदेव ने लड़की को लड़के के रूप में धनलाभ के लिए बदला था। घंटी को गोविन्दी चौबाइन ने पाला-मात्र था। इस कथा को सुन अपनी असली माँ का पता पाने की आशा घंटी को हुई किन्तु विशेष कुछ ज्ञात न हुआ। सरला को अपने पुत्र के विषय

में इतना ही ज्ञात था कि उसे अन्त में अनाथालय की शरण प्राप्त हुई। उसने विजय को बताया कि उसके गले में त्रिकोण स्वर्ण-यन्त्र था। मंगल का त्रिकोण-यन्त्र विजय के पास था। उसने अनुमान किया कि मंगल सरला का पुत्र हो सकता है। पर अनवधानता से उसने सरला को बताया नहीं; साथ ही उसे अपने अनुमान पर शंका थी। Climax of n

किशोरी का दासीत्व त्यागने पर यमुना ने श्रीकृष्ण मन्दिर में आश्रय पाया। इस मन्दिर के अध्यक्ष गोस्वामी कृष्णशरण नामक वयोवृद्ध पुरुष हैं। मंगल भी उनके सम्पर्क में रहता है और उन्हें गुरुवत् मानता है। मंगल और यमुना का पुनः साक्षात्कार हुआ किन्तु परिस्थिति कुछ ऐसी थी कि गोस्वामी कृष्णशरण ने अनुमान किया कि मंगल ने यमुना का अपमान किया है। आत्मविह्वल यमुना के अश्रुसिक्त नेत्र देख कर उन्होंने यह अनुमान किया था। मंगल ने कोई सफाई न दी। गोस्वामीजी ने मंगल के लिए लोक-सेवा रूप में दण्ड व्यवस्था की। मंगल उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर चला गया।

विजय का परित्याग कर किशोरी और निरञ्जन काशी लौट आये, किन्तु उन दोनों के हृदय में शांति न थी। क्रोध से किशोरी ने विजय का तिरस्कार किया, फिर भी सहज मातृ-स्नेह विद्रोह करने लगा। निरञ्जन से दिन में एकाध बार इस विषय को लेकर दो-दो चोंच हो जाना अनिवार्य हो गया। निरञ्जन को बाध्य हो विजय को खोज कर लौटा लाने के लिए वृन्दावन जाना पड़ा। इधर निरञ्जन गया, उधर किशोरी का पति श्रीचन्द्र आ धमका। व्यवसाय में हानि उठाकर वह चन्दा नामक स्त्री के प्रभाव में था। चन्दा की लड़की का विवाह विजय से कराने में उसकी स्वार्थसिद्धि थी। इसी निमित्त वह आया था, पर विजय वहाँ न मिला। विजय की खोज-खबर मिलने तक श्रीचन्द्र ने काशी में रुके रहने का निश्चय किया।

उधर निरञ्जन वृन्दावन में विजय को खोज रहा था। विजय उसे मिला, पर एक हत्यारे के रूप में। घंटी को भगाने के प्रयत्न में आए गुण्डे

और भी दूर कर दिया था। भीषण ज्वर से मूर्छित मंगल की स्वास्थ्य कामना के लिए रात्रि के अन्धकार की चिन्ता न करके सरला यमुना तट पर पहुँची। वहाँ विजय साधु वेश में पड़ा था। सरला की मर्मान्तिक वेदना से द्रवित हो उसने अपने पास सुरक्षित मंगल का त्रिकोण स्वर्ण यन्त्र उसे दिया। साधु का वरदान समझ कर सरला ने उस यन्त्र को मंगल के गले में बाँध दिया। प्रातः जब मंगल की आँख खुली तो अपने गले में पुराना यन्त्र पुनः देख उसे आश्चर्य हुआ। सरला ने भी दिन के प्रकाश में यन्त्र को पहचाना। यह वही यन्त्र था जिसे पहने हुए उसका पुत्र उससे अलग किया गया था। मंगल के बताने पर कि यह उसका पुराना यन्त्र है जिसे वह बाल्यकाल से पहनता आ रहा है, सरला को संशय न रहा कि मंगल उसी का खोया पुत्र है। वर्षों के उपरान्त माँ और बेटे का पुनर्मिलन हुआ। सरला और मंगल के हर्ष में गाला भी सम्मिलित थी।

समाज-संतप्त प्राणियों को अवलम्ब देने के उद्देश्य से 'भारत संघ' नामक संस्था की स्थापना वृन्दावन में हुई। देवनिरंजन और मंगल ने इसकी प्रस्थापना में बड़ी निष्ठा दिखाई थी। गोस्वामी कृष्णशरण का आशीर्वाद भी उन्हें प्राप्त था। लतिका और घंटी ने भी उसमें कार्य-भार संभाला। 'भारत संघ' के समारोह पर गोस्वामी कृष्णशरण ने गाला और मंगल का विवाह सम्पन्न कराया। विजय भी यह देख रहा था। गाला और मंगल के वंश-सूत्र से परिचित होने के कारण उसने भयानक स्वर में व्यंग्य किया—'अच्छा तो है, चंगेज और वर्धनों की सन्तानों की क्या ही सुन्दर जोड़ी है!' विजय मंगल के पाखण्ड से क्षुब्ध हो उठा था। भीड़ में उसे कोई पहचान न पाया किन्तु यमुना ने पहचान लिया। वह विजय को वहाँ से हटा ले गई।

श्रीचन्द्र के मोहन को दत्तक-पुत्र लेने पर किशोरी को पुनः विजय की स्मृति आने लगी। उसका अपना पुत्र न जाने कहाँ था और पराया सम्पत्ति का अधिकारी! एकान्त में विजय का नाम लेकर वह रो उठती।

मनोवेदना की गहरी पीड़ा ने उसे रोगी बना दिया। औषधि से कुछ लाभ न हुआ। रोग मन का था, औषधि शरीर की। फिर क्या लाभ होता? अस्वस्थ हृदय ने शरीर भी जर्जर कर दिया। विजय की स्मृति स्थायी-वेदना के गहरे चिन्ह छोड़ती जाती थी। तभी उसे निरञ्जन का एक पत्र मिला जिससे उसे यह ज्ञात हुआ कि उसकी दासी यमुना निरञ्जन और रामा के अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न हुई थी। निरञ्जन ने स्वीकार किया कि रक्त के सम्बन्ध से विजय और यमुना भाई-बहन हैं। दोनों ही समाज-संतप्त और पीड़ित! इस समाचार से किशोरी की मनोव्यथा और भी बढ़ गई।

इधर किशोरी मरण-शय्या पर थी, उधर विजय को साथ ले यमुना काशी आई। उसका पुत्र श्रीचन्द्र-किशोरी का दत्तक था, अतएव उसने उसी परिवार में पुनः दासी वृत्ति ग्रहण की। किशोरी ने अन्तिम समय के पूर्व उसे पा लिया—पहचान लिया। विजय समाज की कठोर उपेक्षा का तिरस्कार करता दशाश्वमेध घाट पर विद्रोह की अन्तिम चिनगारी हृदय के अन्तस्तल में जला रहा था और जल भी रहा था। यमुना उसे वहीं भोजन दे जाती। उसे किशोरी की मरणासन्न-अवस्था यमुना से ज्ञात हुई। मृत्यु-शय्या पर जब किशोरी का जीवन-दीप बुझने वाला था, तभी विजय उसके पास पहुँचा। विद्रोही पुत्र की स्नेहाञ्जलि ग्रहण कर किशोरी अनुभूतियों के बन्धन तोड़ गई।

किशोरी की मृत्यु के उपरान्त विजय दशाश्वमेध लौट गया। वहीं पड़े रह कर वह यमुना की रोटियों से पेट भरता। उसके हाथ वह पत्र पड़ चुका था जिसमें निरञ्जन ने किशोरी को विजय और यमुना के रक्त सम्बन्ध, भाई-बहन सम्बन्ध का रहस्योद्घाटन किया था। पढ़ते-पढ़ते विजय की आँखों में आँसू आ गए। उसकी धड़कन बढ़ गई, वह तलमला कर देखने लगा। जीवन का अन्त निकट आता जान उस नास्तिक ने मन ही मन भगवान् का स्मरण किया—इसलिए कि यमुना के सम्बन्ध में उसकी कितनी रक्षा हुई। उसे क्या ज्ञात था कि जिस यमुना से वह प्रणय-

भाव रखता था, वही एक दिन उसकी बहन निकलेगी! जिस अदृश्य शक्ति ने उसे बाल-बाल बचाया मरते समय उसके प्रति विजय ने अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

विजय की मृत्यु के समय ही प्रचार के लिए दशाश्वमेध घाट पर भारत-संघ का प्रदर्शन था। यमुना के साथ मोहन मेला देखने आया था। यमुना ने विजय का शव देखा। वह रो पड़ी। श्रीचन्द्र से दस रुपये लेकर उसने विजय की दाह-क्रिया के लिए संघ के स्वयंसेवकों को दिए। स्वयंसेवकों के साथ घंटी, गाला और मंगल भी वहाँ आए थे। उन्होंने देखा—एक स्त्री पास ही मलिन वसन में बैठी है। उसका घूँघट आँसुओं से भींग गया है। और निराश्रय पड़ा है, एक—कंकाल!

वस्तु

'कंकाल' की कथावस्तु चार भागों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में कथा का प्रारम्भ और विकास होता है। प्रायः सब प्रमुख पात्रों का परिचय इस खण्ड में प्राप्त हो जाता है। मंगल, तारा (यमुना) विजय, किशोरी, श्रीचन्द्र, निरञ्जन इत्यादि मुख्य पात्र प्रथम भाग में अपने कार्य-कलाप की रेखाएँ अंकित कर जाते हैं। इस भाग में किशोरी-निरञ्जन के अवैध-सम्बन्ध से उत्पन्न परिस्थितियाँ, तारा-मंगल के प्रणय सूत्र से टूटने पर उसका उपन्यासव्यापी प्रभाव, जारज विजय की विद्रोही प्रकृति की आगत संभावनाएँ विशेष ध्यान आकृष्ट करती हैं। द्वितीय खण्ड में घंटी का परिचय मिलता है। विजय की यमुना के प्रति प्रणय-प्रवृत्ति असफल हो घंटी की ओर उन्मुख होती है। घंटी को लेकर किशोरी-परिवार के अस्त-व्यस्त होने पर विजय और यमुना के भविष्य के प्रति उत्सुकता लेकर पाठक आगे बढ़ता है। यमुना को गोस्वामीजी का आश्रय दिला और विजय को बाथम से मिलाकर उपन्यासकार ने इस उत्सुकता का शमन किया। दूसरे भाग में घटनाओं द्वारा कथा-विकास क्रम है। कथा-वस्तु उद्देश्य-सिद्धि के निमित्त अग्रसर होती है। लतिका और सरला का परिचय तीसरे खण्ड की उत्सुकता की भूमिका है। लतिका बाथम के

कार्य-कलाप और जीवन-यात्रा में परिस्थितियों के प्रभाव ने जितना योग दिया है उतना अन्य पात्रों में नहीं।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि 'कंकाल' की पात्र-सृष्टि साभिप्राय है। प्रायः सभी पात्र समाज के खोखले स्वरूप की निस्सारता दिखाने के लिए प्रस्तुत किए गए हैं। रक्त-शुद्धि और वर्णाश्रम की सचाई में अविश्वास करने वाली विचारधारा ने जिस वर्णसंकर समाज की सृष्टि की है, उसी के विभिन्न सदस्यों के रूप में 'कंकाल' के पात्र आयोजित हैं। जिस प्रकार इस उपन्यास की कथावस्तु घटना-प्रचुर है, उसी प्रकार पात्र भी अनेक हैं। घटना की भाँति ही पात्र-सृष्टि भी साभिप्राय है। विजय और मंगल का चरित्र लीजिए। विजय समाज-द्रोही है। गलते-सड़ते समाज का नग्न-रूप दिखाने के लिए प्रसाद ने इस चरित्र की योजना की। मंगल द्वारा कथाकार ने समाज के उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कराया है जिनका व्यक्तिगत जीवन उनके सामाजिक जीवन के अनुरूप नहीं होता और जो लोकसेवा के पाखण्ड की आड़ में अपनी दुर्बलता छिपाये रहते हैं। किशोरी उन स्त्रियों की प्रतिनिधि है जो सन्तान-लालसा की वेदी पर अपने जीवन का होम कर देती हैं। श्रीचन्द्र व्यवसाय-बुद्धिसम्पन्न उस वर्ग का प्रतिनिधि है जो परिस्थितियों के अनुकूल मनोवृत्ति बना लेने में दक्ष है। निरञ्जन पथभ्रष्ट सन्यासी है। यमुना के चरित्र द्वारा उपन्यासकार ने समाज-संतप्त नारियों का प्रतिनिधित्व कराया है जिन्हें सच्चे प्रणय के प्रतिफल में समाज के क्रूर और कठोर हाथों निरन्तर जुल्म सहना पड़ता है। घंटी हिन्दू विधवा की निस्सहायावस्था और अनिश्चितता की कथा से पाठकों का परिचय कराती है। इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त सरला, लतिका, रामदेव, नन्दो, भंडारी, वदन, गाला इत्यादि अन्य चरित्र किसी न किसी रूप में कथाकार के अभिप्राय से सम्वन्धित होकर ही उपन्यास में आये हैं। लक्ष्य-विशेष को ध्यान में रख कर सृजित उपन्यास में साभिप्राय पात्र-योजना स्वाभाविक ही है।

'कंकाल' के पात्रों में दो समूह—स्त्री और पुरुष—पृथक दिखाई

देते हैं। प्रायः सब स्त्रियाँ समाज-संतप्त हैं। अपवाद रूप में माला का उल्लेख ही संभव है। इसके विपरीत पुरुष-पात्रों में विजय को छोड़ कर कदाचित् अन्य कोई पात्र समाज-उपेक्षित नहीं है। इसमें संशय नहीं कि कथाकार प्रसाद की सहानुभूति नारी पात्रों के साथ है। उनके कष्ट और पीड़ा को उनका भावुक-स्रष्टा असहृदय होकर नहीं देख सकता। प्रसाद ने 'कंकाल' के जिस पुरुष-प्रधान समाज में नारी का उत्पीड़न दिखाया है, उसकी दुर्दमनीय-ज्वाला में स्त्री-पात्रों को कथाकार की सहानुभूति की विशेष आवश्यकता थी। अपने इस दायित्व को उपन्यासकार ने भलीभाँति समझा था। उसके नारी-पात्र अपने पतन की पवित्रता से सड़े-गले हिन्दू-समाज का पथ आलोकित कर जाते हैं।

'कंकाल' के पात्रों का व्यक्तित्व पूर्ण विकसित नहीं है। पर उपन्यास के पात्र गतिशील हैं। उनका कार्य-कलाप और बौद्धिक पृष्ठ-भूमि उनकी गतिशीलता का प्रमाण है। पर प्रेमचन्द के पात्रों की गत्यात्मकता प्रसाद के पात्रों में दृष्टिगत नहीं होती। उपन्यास-क्षेत्र में प्रसाद ने अधिक योग भी नहीं दिया था। कदाचित् आगे चल कर वह ऐसा करते जिससे पात्रों की बहुमुखी प्रवृत्तियों का अंकन संभव होता। फिर भी 'कंकाल' के पात्र पाठक को आकर्षित करने में सफल हैं।

इस उपन्यास में वर्ग-प्रतिनिधि और वैयक्तिक, दोनों प्रकार के पात्र समाविष्ट हैं। प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी-प्रतिभा वैयक्तिक-चरित्र-सृष्टि में विशेष सफल हुई है। इसीलिए 'कंकाल' के वैयक्तिक-चरित्र सामान्य होकर भी महान् हैं। वर्ग चरित्रों में प्रेमचन्द की सी अन्तर्दृष्टि का परिचय प्रसाद नहीं दे पाए हैं। उनके वर्ग-चरित्र भी पूर्णतया वर्गनिष्ठ नहीं होते। उनके साथ उनकी वैयक्तिक-प्रवृत्तियाँ संलिप्त हैं। इसलिए 'कंकाल' के कुछ चरित्रों के साथ वर्गगत या वैयक्तिक चरित्र-निर्णय का समालोचनात्मक मानदण्ड पूरा-पूरा लागू नहीं होता। प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को समझने वाला पाठक उनके चरित्रांकन की इस विशिष्टता का मूल कारण भलीभाँति जानता है। 'कंकाल' में यमुना का चरित्र कुछ

इसी प्रकार का है जिसमें वर्गवृत्तियाँ वैयक्तिकता से निर्लिप्त नहीं है। यमुना का चरित्र इस संयोग से निखर उठा है । प्रसाद की यह प्रवृत्ति इस उपन्यास के घंटी आदि अन्य पात्रों में भी दृष्टिगत होती है। जिन पात्रों का बौद्धिक-पक्ष प्रबल है वे प्रसाद की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी इस प्रवृत्ति का अच्छे ढँग से निर्वाह कर पाते हैं।

'कंकाल' के पात्रों में मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व की न्यूनता का कारण है कथाकार की भावात्मक चरित्र-चित्रण प्रणाली। प्रसाद मूलतः कवि हैं। उपन्यासों के चरित्र-चित्रण में विश्लेषणात्मक-प्रवृत्ति की अपेक्षा उनकी भावात्मक-प्रवृत्ति प्रमुख है । भावात्मक-प्रवृत्ति के कारण ही प्रसाद चरित्रांकन की मनोवैज्ञानिक-पद्धति से पूरा लाभ नहीं उठा पाए। मंगल और यमुना के चरित्र-चित्रण में कथाकार ने कुछ स्थलों पर मनोवैज्ञानिक सूझ का अच्छा परिचय दिया है किन्तु वह अन्तर्द्वन्द्व अस्फुट रह गया है और चरित्र-व्यापी प्रभाव को स्पष्ट नहीं कर पाता। प्रसाद ने चरित्र-चित्रण की नाटकीय विधि का 'कंकाल' में अधिक प्रयोग किया है जिसमें भावात्मकता की छाप गहरी है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व-निरूपण कथाकार के मनोद्वेग की धारा में होना कठिन हो जाता है। इसलिए प्रसाद पात्रों के मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व की योजना कम कर पाए हैं।

उपन्यास की पात्र-योजना के निर्वाह में कथाकार एक स्थल पर स्पष्ट कृत्रिमता से काम लेता है। रामदेव भिखारी का वस्तु में स्थान न रहने पर उसकी आत्महत्या कराई गई है। रामदेव द्वारा प्रसाद ने इसका कारण भी बताया है, पर वह अधिक विश्वसनीय नहीं। वस्तुतः कथा वस्तु में उसका स्थान न रहने पर प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्रों की भाँति ही उसका अन्त कराया गया है। रामदेव सामान्य पात्र होते हुए भी कथा-प्रगति की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उसकी आत्महत्या पात्र-योजना के कलात्मक-निर्वाह में त्रुटि मानी जायगी। घंटी, लतिका आदि कुछ स्त्री पात्रों की कथावस्तु में स्थान-समस्या विकट रूप धारण कर लेती यदि 'भारत संघ' में उन्हें आश्रय न मिलता। 'भारत संघ' जहाँ एक ओर

रखती है। विजय की जीवन-कथा उपन्यासकार के मन्तव्य के अधिक निकट होने के कारण मुख्य-कथा कही जा सकती है। पर इन दो कथाओं में से किसी एक को प्रमुख-कथा कहना कठिन है। वस्तुतः मंगल और विजय, दोनों की कथा का सम्मिलित रूप कथाकार के उद्देश्य की पूर्ण प्रतिष्ठा करता है। अतएव यह सिद्ध होता है कि 'कंकाल' में एक प्रमुख कथा नहीं है। छोटी-बड़ी कथाओं का सम्मिलित रूप 'कंकाल' की वस्तु का आकार ग्रहण करता है। 'कंकाल' में विजय और मंगल की मुख्य कथाओं को परस्पर अनुस्यूत करने के लिए अनेक प्रसंगों की अवतारणा की गई है। कृत्रिम वस्तु-विन्यास-पद्धति की योजना के कारण कथाकार प्रसाद इस कार्य में विशेष सफल नहीं हुए हैं। साथ ही प्रसंग भी अनेक हैं। गौण कथाओं में किशोरी-निरञ्जन, रामा-भंडारी, श्रीचन्द्र-किशोरी, श्रीचन्द्र-चन्दा, और वदन-गाला की कथाएँ हैं। इनमें भी किशोरी, निरञ्जन और गाला का विशेष स्थान है। इन गौण कथाओं को विजय और मंगल की कथा से अनुस्यूत करने के लिए कथाकार सचेष्ट अवश्य दृष्टिगत होता है, पर उसकी कृत्रिम कथा-विकास-पद्धति लक्ष्य-प्राप्ति में बहुत-कुछ बाधक है। कथाएँ स्वाभाविक रूप से परस्पर अनुस्यूत नहीं हैं; उनके सम्बन्ध-सूत्र न तो दृढ़ हैं और न कलात्मक-रीति से आयोजित। इसलिए एक संगठित कथावस्तु की आशा 'कंकाल' से नहीं की जा सकती। उपन्यास की कथावस्तु के असमतल प्रवाह का मुख्य कारण है अनेक गौण-कथाओं और प्रसंगों की वस्तु में योजना। यदि प्रसाद अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए एक संतुलित और सहज-गतिशील कथावस्तु का निर्माण करते तो अपने लक्ष्य में अधिक सफलता प्राप्त कर सकते थे। पर ऐसा नहीं हो सका। प्रसाद वस्तु के 'शॉक ट्रीटमेंट' में अधिक रुचि रखते हैं जिससे कथा-प्रवाह असमतल हो गया है। संक्षेप में, 'कंकाल' की कथावस्तु कलात्मकता में अप्रौढ़, विशृंखलित और असंगठित है। प्रसाद का वस्तु-निर्माण-कौशल इस उपन्यास में सफल नहीं रहा।

'कंकाल' की वस्तु-निर्माण-पद्धति प्राचीन शैली से प्रभावित है जिसमें

सामाजिक-संगठन से सम्बन्धित है, दूसरी ओर उसके द्वारा कुछ स्त्री पात्रों का कथावस्तु के अन्त में निर्वाह-प्रश्न भी हल किया गया है। उपन्यासकार की यह योजना सफल है जिससे कथावस्तु में पात्र-निर्वाह की समस्या का भलीभाँति समाधान हो गया है।

'कंकाल' के कुछ विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है—

विजय, किशोरी और निरञ्जन के अवैध-सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ था। प्रारम्भ से ही हम उसे एक विद्रोही के रूप में देखते हैं जो समाज की प्रचलित-मान्यताओं का विरोधी है। उसके सामाजिक-जीवन की परिचालक शक्ति बुद्धिवाद है। अन्धभक्त की भाँति वह समाज की सड़ी-गली मान्यताओं पर विश्वास नहीं कर लेता, अपितु अपनी बुद्धि से संग्रह-त्याग करता है। हिन्दू-समाज की दुर्बलताओं का वह खुलकर विरोध करता है। समाज के रूढ़िवादी गन्दे पञ्जों से वह व्यक्ति की स्वतंत्रता की माँग करता है। हिन्दू-समाज के दुर्बल और दुर्दशा-ग्रस्त रूप पर उसने विकट व्यंग्योक्तियों से प्रहार किया है। अपने विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति में वह अपार साहस का परिचय देता है। विरोध उसे पराभूत नहीं कर पाता; उसका सामना करने में वह उद्धत, आक्रामक और व्यंगी-स्पष्टवक्ता बन जाता है। समाज पर किए उसके व्यंग्य सच्चे और मार्मिक हैं। वे समाज के यथार्थ दुर्बलस्वरूप का सच्चा चित्र खींच देते हैं! उसका आत्माभिमान भी एक सच्चे और ईमानदार व्यक्ति का आत्माभिमान है। किशोरी ने उसे छोड़ दिया, पाखण्डी निरञ्जन ने 'मद्यप' कह कर उसका तिरस्कार किया। उसका आत्माभिमान इस चोट से तिलमिला उठा। अभिमानी विजय की विद्रोही-प्रवृत्ति ने पाखण्डियों के नग्न-रूप को इन मार्मिक शब्दों में प्रकट किया था—'मैं अपने कार्यों पर हँसता हूँ; लज्जित नहीं होता। जिन्हें लज्जा बड़ी प्रिय हो, वे उसे अपने कार्यों में खोजें!' यही नहीं, धर्म के दंभी रूप और दंभी धार्मिकों का वह खुलकर विरोध करता है। यमुना को अपवित्र अनुमान करके जब निरञ्जन ने ठाकुर-द्वार में प्रवेश-निषिद्ध कर दिया, तब विजय से उसका

पारस्परिक-सम्बन्ध पर घंटी के आगमन की प्रतिक्रिया और सरला के खोये पुत्र को मंगलदेव के रूप में देखने की सम्भावना तृतीय खण्ड में पाठक को प्रविष्ट कराती है। तीसरे खण्ड में उपन्यास की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं। इसी खण्ड में गाला का परिचय मिलता है। इस भाग की कुछ घटनाएँ पात्रों के क्रिया-कलाप से विकास प्राप्त करती हैं। लतिका-बाथम के सम्बन्ध-विच्छेद, किशोरी-श्रीचन्द्र पुनर्मिलन के अतिरिक्त इस खंड की महत्वपूर्ण घटना है, हत्यारे विजय को बचाने के निमित्त यमुना का आत्मत्याग ! यह घटना जहाँ एक ओर विजय को लोक-बाह्य कर देती है, वहीं यमुना के भविष्य के प्रति पाठक की जिज्ञासा तीव्र करती है। विजय का दस्युओं के स्वामी बदन के आश्रय मे रहना और उसकी पुत्री गाला से सम्पर्क नवीन संभावनाओं की सृष्टि करता है किन्तु उपन्यासकार इन संभावनाओं को आगे न बढ़ने देकर यहीं से बटोरना प्रारम्भ करता है। गाला-विजय की परस्पर उपेक्षा कथा के एक पक्ष को संभाल कर आगे बढ़ती है। चौथे खंड के प्रारम्भ में ही मोहन का परिचय मिलता है। मोहन, तारा-मंगल की अवैध सन्तान है जिसे आगे चलकर श्रीचन्द्र का दत्तक पुत्र बनाया गया। बदन की मृत्यु और गाला का मंगल से परिणय इस खंड की विशेष घटनाएँ हैं। मंगल को सरला का पुत्र सिद्ध करके कथाकार उत्सुकता का स्थायी शमन करता है। उधर यमुना और विजय समाज-उपेक्षित हो अपना पथ स्वयं निर्धारित करते हैं। यमुना श्रीचन्द्र-किशोरी का दासीत्व ग्रहण करती है, विजय समाज के तिरस्कार को तिरस्कृत कर मर जाता है। चौथे खंड के अन्त में कथा-सिद्धि का चरम-लक्ष्य, विजय का कंकाल समाज को चुनौती देता नेत्रों के सम्मुख घूमता रहता है। कथा के अन्त में सबसे मार्मिक-रहस्य का उद्घाटन होता है—यमुना विजय की बहन है !

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'कंकाल' का वस्तु-निर्माण घटना-प्रधान है। घटनाओं का आधिक्य वस्तु-कौशल की आरंभिक आवश्यकताओं की उपेक्षा का परिणाम है। कथा-संगठन की शिथिलता

स्वित नवीन समाज-चेतना रूढ़ि के विरुद्ध स्वतंत्रता और परम्परा के विरुद्ध प्रगति का संदेश देती है। रूढ़िवादी समाज-संगठन में वह कहीं नहीं रहता पर उसकी मनस्विता का प्रभाव अमिट बना रहता है।

मंगल का चरित्र विजय से भिन्न सामाजिक-दृष्टिकोण का परिचायक है। सेवा, उद्धार, उत्सर्ग और आदर्शवादिता की ओट में उसकी परम्परा-निष्ठा और रूढ़िवादिता पनपती रहती है। वह दुर्बल और समाज भीरु है। तारा का वेश्यागृह से उद्धार कर उससे विवाह करने के लिए प्रस्तुत होता है किन्तु तारा के अवैध जन्म की कथा ज्ञात होते ही उसका साहस चूहे के बिल में समा जाता है। समाज का कोप-भाजन बनने की दुश्चिन्ता उसे विश्वासघाती बना देती है। तारा के साथ उसका विश्वासघात उसे बहुत नीचे गिरा देता है। सड़े-गले समाज की मान्यताएँ और धार्मिक पाखण्ड उसकी मनोवृत्ति से बड़ा साम्य रखते हैं। वह समझता है कि प्राचीन धर्म और समाज-पद्धति की सीमा के अन्दर सुधार होने से वर्तमान परिस्थितियों में भी काम चल जायगा। उसने विजय से एक बार कहा था—'मैं प्राचीन धर्म की सीमा के भीतर ही सुधार का पक्षपाती हूं।' पर एक दिन उसको यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा कि सुधार वांछनीय नहीं है, वांछनीय है परिवर्तन। उसने गोस्वामी कृष्ण-शरण से कहा था—'मेरी धारणा थी कि धार्मिक-समाज में कुछ भीतरी सुधार कर देने से काम चल जायगा······किन्तु······आज परिवर्तन आवश्यक है। एक दिन मैंने अपने मित्र विजय का इन्हीं विचारों के लिए विरोध किया था······।' मंगल के भ्रमजर्जर चरित्र पर विजय के आत्म-विश्वास की जीत इन शब्दों में गूँज रही है। रूढ़िवादिता मंगल के सद्विचारों का पीछा नहीं छोड़ती और उसकी दुर्बलता उसके समस्त कार्यों को पाखण्डमय बना देती है। 'भारत संघ' में वह स्त्रियों की दीन दशा का रोना रोता है, उनके उत्पीड़न पर आँसू बहाता है किन्तु उसे अपना हृदय टटोलने की आवश्यकता ज्ञात नहीं होती जो यमुना के प्रति किए अन्याय, विश्वासघात और दुर्नीति से मलिन है। उसका यह पाखण्ड

उसके मोहक-शब्दों के आवरण को फाड़कर उसका वास्तविक स्वरूप—समाज-भीरु दुर्बल व्यक्ति का—स्पष्ट दिखा देता है। यमुना की उपस्थिति में ही बिना किसी हिचक के वह गाला से विवाह कर लेता है। जिस स्त्री के सच्चे प्रणय को लांछित करके उसने उसके जीवनव्यापी कष्ट-वेदना की सृष्टि की थी, उसी के सम्मुख अपनी पाखण्डी-भद्रता का प्रदर्शन उसकी आत्महीन मनुष्यता का परिचायक है। अन्त में वह समाज-सेवक और सुधारक के रूप में हमारे सम्मुख आता है जिसकी सुधारवृत्ति-मानवीयता से असंपृक्त मशीनी-ढंग की है। विजय के 'कंकाल' के क्रिया-कर्म के लिए की व्यवस्था में उसने जिस काम-काजी ढंग का परिचय दिया था, वह घंटी को सहन नहीं हुआ। उसने मंगल से कहा था—'मनुष्य के हिसाव-किताव में काम ही तो वाकी पड़े मिलते हैं।' यह हिन्दू-समाज और जीवन की विडम्वना ही है कि विजय जैसे ईमानदार और निष्कपट व्यक्ति को समाज-व्यवस्था 'लीक्यूडियेट' कर देती है और मंगल जैसा दुर्वल और भीरु व्यक्ति समाज का सम्भ्रान्त नेता वन जाता है।

निरञ्जन, विजय और मंगल से भिन्न व्यक्ति है। वाल्यकाल में ही उसके माता-पिता ने विना उसकी इच्छा के उसे संसार से—जिसे उसने अभी देखा भी नहीं था—अलग कर दिया। वह गुरुद्वारे की भेंट चढ़ा दिया गया। निष्ठुर माँ-बाप ने अन्य सन्तानों के जीवित रहने की आशा में जेष्ठ-पुत्र को सन्यास-जीवन प्रदान किया। अल्पकाल में ही वह विख्यात महात्मा हुआ। किन्तु कृत्रिम संयम—युवावस्था का संयम पहले ही आघात से टूटने लगा। वालसखी किशोरी को वर्षों के वाद देख उसकी मनोवृत्ति कामनासिन्धु में डूव गई। किशोरी के साथ उसके अवैध-सम्बन्ध ने उसे पुनः संसारी बना दिया! निवृत्ति-मार्ग से स्खलित होकर उसने भक्ति का प्रवृत्ति-मार्ग ग्रहण किया, पर वस्तुस्थिति यह थी कि वह अपनी पतित-आत्मा को छिपाने का पाखण्ड रच रहा था। स्मृतियों के डंक की पीड़ा उसके पतन की विभीषिका को और भी वढ़ाती थी। ईश्वर के लोकरञ्जक पतितपावन रूप की कल्पना ही उसका एक मात्र

घटना प्रधान रहती है। हिन्दी-उपन्यासों के प्रारम्भिक काल के उपन्यासों की कथावस्तु प्रायः इसी ढँग की होती थी। पात्रों द्वारा परिस्थिति-योजना और इनके प्रभाव से कथावस्तु की प्रगति का कलात्मक सिद्धान्त तब ग्राह्य न था। उस पुरानी कथावस्तु-प्रणाली का प्रभाव 'कंकाल' में स्पष्ट अंकित है। कथाकार ने जिस घटना-प्रमुख कृत्रिम कथावस्तु-शैली का प्रयोग किया है, वह कृति के संगठित प्रभाव में बाधक है।

पात्र

घटना-प्रधान उपन्यासों में कलात्मक पात्र-सृष्टि कम संभव है। घटना वैचित्र्य के प्रवाह और प्रभाव में चरित्रों की सुस्पष्ट रेखाएं नहीं खिंच पातीं और न पात्रों के व्यक्तित्वों का विकास हो पाता है। ऐसे उपन्यासों में पात्र घटनाओं के दबदबे से इतना अभिभूत रहता है कि उसके चरित्र विकास का अवकाश प्रायः नहीं मिलता। उपन्यासकार पात्रों के चरित्र-चित्रण के कलात्मक निर्वाह से अधिक घटना-चक्र के प्रति सजग रहता है। फलस्वरूप पात्रों को सजीव बनाने में अपेक्षित कला के प्रति कथाकार पूर्ण जागरूक नहीं रहता। 'कंकाल' भी घटना-वैचित्र्य-प्रधान औपन्यासिक कृति है। इसमें पात्रों के सम्यक् चरित्र-विकास का प्रयत्न विशेष नहीं है—जितना है वह सजीव पात्र-योजना नहीं कर पाया है। वस्तुतः 'कंकाल' के पात्र उपन्यासकार की उद्देश्य-प्रतिष्ठा के निमित्त-मात्र हैं, उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उपन्यासकार के संकेत से वे कठपुतलियों की भाँति परिचालित हैं। आदर्श-प्रतिष्ठा के लिए जिस प्रकार प्रेमचन्द ने कुछ कठपुतली-पात्रों की सृष्टि की है, उसी प्रकार प्रसाद ने 'कंकाल' में मन्तव्य-निर्वाह के आधीन ही अपने पात्रों को रखा है। इसीलिए 'कंकाल' के पात्रों का स्वतन्त्र-अस्तित्व नहीं हो पाया। 'कंकाल' के समस्त पात्रों में विजय का चरित्र ही बहुत-कुछ स्वतन्त्र-अस्तित्व रखता है। उसके चरित्र-विकास में पूर्णता का जो आभास मिलता है वह इसलिए कि अन्य चरित्रों की अपेक्षा उसके चरित्र-चित्रण में परिस्थितियों के प्रभाव का अंकन किया गया है। विजय के

मिथ्या दंभ देखा न गया। उसने खुलकर निरञ्जन ऐसे व्यक्तियों का विरोध किया—'धर्म के सेनापति विभीषिका उत्पन्न करके साधारण जनता से अपनी वृत्ति कमाते हैं और उन्हीं को गालियाँ भी सुनाते हैं। यह गुरुडम कितने दिनों चलेगा………।' उसके चरित्र की व्याख्या करते हुए किसी आलोचक ने ठीक ही कहा है—'वह विद्रोह की खुली हुई तलवार है।' विचार और आचरण, कथनी और करनी द्वारा विजय अपने विश्वास की सत्यता प्रमाणित करता है। पाखण्डी मंगल की भाँति उसने अपनी प्रेमपात्रियों के प्रति विश्वासघात नहीं किया। यमुना की मनोदशा का परिचय मिलने पर उसने घंटी से सम्पर्क स्थापित किया था। किन्तु उसने दोनों में से किसी के प्रति भी विश्वासघात नहीं किया। घंटी को बचाने के लिए वह प्राणों की चिन्ता न कर गुंडों से भिड़ गया। यमुना ने उसका प्रेम-प्रस्ताव ठुकराते हुए भाई के निस्वार्थ-स्नेह की भीख माँगी थी। विजय ने जीवन के अन्तिम दिनों में उसका प्रतिदान करते हुए अपनी पूर्ण सज्जनता और मनुष्यता का परिचय दिया था। अन्तिम-समय उसे ज्ञात हुआ कि यमुना सचमुच उसकी बहन थी। अपने प्रेम-प्रस्ताव की वीभत्स-कल्पना से उसे मर्मान्तिक वेदना हुई। एक गुरुतर अपराध से जिस अदृश्य शक्ति ने उसे बचाया था, उसके चरणों में उसका नास्तिक-हृदय झुक जाता है। समाज और धर्म के पाखण्ड से उसका जीवनव्यापी संघर्ष उसे तोड़ देता है। अनवरत उपेक्षित हो वह समाज से दूर होता जाता है। अन्त में मृत्यु की काली-क्रोड उसे छिपा लेती है। मर कर भी विजय समाज को चुनौती देता रहता है। उसका कंकाल समाज के नग्न-रूप की वास्तविकता को सत्य की सीमा से मिला देता है। 'परम्परा और रूढ़ि के अस्वस्थ-वातावरण में प्राकृतिक, स्वस्थ, मानव चेतना का प्रतीक विजय कहीं नहीं रहता।' रूढ़ि-विरोधी नई सामाजिक चेतना विजय के चरित्र में परिव्याप्त है। समाज के पाखण्डी स्तम्भों के विपरीत विजय की सचाई, निष्कपटता और ईमानदारी उसके चरित्र की दृढ़ता से मिलकर स्वस्थ मनोवृत्तियों का परिचय देती है। उसकी उर्ज-

सहारा था। किन्तु उसकी भक्ति भी सच्ची न थी। पदस्खलितता को छिपाने का यह आवरण भी बड़ा झीना था जिससे उसकी धार्मिक-दंभता के चिन्ह छिप न सके। विजय और यमुना को अपवित्र मानकर उसने उनका तिरस्कार किया किन्तु पाखण्डी निरञ्जन यह नहीं जानता था कि इससे वह स्वयं तिरस्कृत होता है। यमुना और विजय उसी की पाप-लीला के प्रतिफल थे। उन्हें अपवित्र घोषित करने वाला निरञ्जन स्वयं पवित्र होने का दावा करता है—कितना बड़ा पाखण्ड है यह, कितना भारी दंभ! एक दिन उसे अपनी भूल ज्ञात होती है। तब उसने किशोरी को लिखा—'किशोरी! इतना तो निसन्देह है कि मैं तुमको पिशाच मिला—तुम्हारे आनन्दमय जीवन को नष्ट कर देने वाला भारतवर्ष का यह साधु नामधारी हो। यह कितनी लज्जा की बात है!......और सबसे भयानक बात तो यह थी कि मैं अपने विचारों में पवित्र था......पर रोगी शरीर में स्वस्थ हृदय कहाँ से आवेगा?......तुमको स्मरणहोगा कि मैंने एक दिन यमुना नाम की दासी को तुम्हारे यहाँ देवगृह में जाने से रोक दिया था—उसे बिना जाने-समझे अपराधिनी मान कर। मैं सोचता हूं कि अपराध करने में भी मैं उतना पतित नहीं था, जितना दूसरों को बिना जाने-समझे छोटा, नीच, अपराधी मान लेने में......किशोरी मैंने खोज कर देखा कि मैंने जिसको सबसे बड़ा अपराधी समझा था, वही सबसे अधिक पवित्र है! वही यमुना—तुम्हारी दासी!' आत्म-दर्शन की ज्वाला में उसकी मनोवेदना बढ़ गई। सामाजिक और धार्मिक जीवन की निस्सारता ने उसे और भी उद्विग्न कर दिया। अन्त में एकान्तवास के लिए वह किसी अज्ञात-स्थान में चला गया। वस्तुतः जीवन के वात्याचक्र से अब वह अलग होता है। उसने सच्चे अर्थ में सन्यास ग्रहण किया।

श्रीचन्द्र में व्यावसायिक वृत्ति प्रधान है। जिस पत्नी को उसने कलंकित जानकर पृथक किया था, परिस्थितियों की प्रतिकूलता में उससे समझौता करने में किसी आन्तरिक बाधा का अनुभव नहीं करता। चन्दा से भी प्रेम से अधिक वह व्यवसाय करता है। किशोरी से मेल होते ही चन्दा

के प्रति उसके प्रेमभाव का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। पत्नी से पुनः साहचर्य प्राप्त कर ही वह सन्तुष्ट नहीं होता, अपनी सांसारिकता का पूरा निर्वाह दत्तक-पुत्र की व्यवस्था द्वारा कर लेता है। वस्तुतः उसके चरित्र में कोई विशेषता नहीं है—वह एक औसत प्रवृत्तियों का मनुष्य है, जिसकी व्यावसायिकता प्रतिकूल परिस्थितियों को संभालने में दक्ष है।

श्रीचन्द्र की पत्नी किशोरी की सन्तान-कामना उसके हृदय की सबसे बलवती आकांक्षा है। सन्तान प्रेम उसके पतन के बावजूद भी उसे हमारी दृष्टि में गिरने नहीं देता। सन्तान का वरदान पाने के लिए जब वह तीर्थों में महात्माओं की चरण-धूलि लेती फिर रही थी, तभी उसे बाल्यकाल का साथी रञ्जन सन्यासी देवनिरञ्जन के रूप में मिला। रञ्जन ने भूली-बिछुड़ी स्मृतियों को उसके हृदय में जगा दिया। सन्तान-कामना उसे पतन के अथाह-सिन्धु में बहा ले गई। विजय की उत्पत्ति पर पति श्रीचन्द्र का कोप सहना पड़ा। पति ने काशी में जारज पुत्र के साथ किशोरी के निवास का प्रबन्ध करा दिया। वहाँ भी निरञ्जन का आना-जाना बना रहा। पर उसके प्रेम का प्रधान केन्द्र था—विजय! घंटी को लेकर जब विजय से उसका मनमुटाव हो गया तब उसे विजय का साथ छोड़ना पड़ा। वह काशी लौट आई किन्तु मन में अशान्ति थी। क्रोध से किशोरी ने विजय का तिरस्कार किया फिर भी सहज मातृस्नेह विद्रोह करने लगा। निरञ्जन के निर्वैयक्तिक भाव ने उसे और भी व्यथित कर दिया। वास्तव में निरञ्जन का पक्ष लेकर ही वह विजय से विमुख हुई थी। वह निरञ्जन को पुत्र त्याग का जिम्मेदार समझती थी। पारस्परिक झगड़े के कारण निरञ्जन ने घर छोड़ने का निश्चय किया तब किशोरी ने जिन शब्दों में उसकी प्रताड़ना की थी, वे उसके मनोवेदनाग्रस्त मातृस्नेह की दुहाई देते हैं। उसने कहा था—'तो रोकता कौन है, जाओ! परन्तु जिसके लिए मैंने सब कुछ खो दिया है उसे तुम्हीं ने मुझसे छीन लिया—उसे देकर जाओ! जाओ तपस्या करो, तुम फिर महात्मा बन जाओगे! सुना है, पुरुषों के तप करने से घोर-से-घोर कुकर्मों को भी भगवान् क्षमा करके उन्हें दर्शन देते हैं।

पर मैं हूं स्त्री जाति ! मेरा यह भाग्य नहीं, मैंने पाप करके जो पाप बटोरा है उसे ही मेरी गोद में फेंकते जाओ ।' किशोरी के जीवन भर के पाप-पुण्य का संचित-धन विजय हत्या का अपराधी बन उसे चिरस्थायी वेदना दे जाता है। उसकी स्मृति में किशोरी का मातृ-हृदय क्रन्दन कर उठता । श्रीचन्द ने मोहन को दत्तक पुत्र बना कर उसकी मनोव्यथा को प्रगाढ़ कर दिया । दुर्दैव के परिहास से उसका अपना पुत्र निर्वासित था और नवागन्तुक कल्पित-संतान उत्तराधिकारी ! नियति की इस आकस्मिक विडम्बना ने उसके हृदय में अपरिसीम व्यथा भर दी। मन का रोग शरीर को जर्जर करने लगा। मृत्यु-शय्या पर छटपटाता उसका स्नेह एक दिन विजय को उसके पास ले ही आया। चरणों में पड़े पुत्र की अन्तिम श्रद्धा पर अश्रुपात करती वह स्नेहमयी दुखिया माँ, जिसने पाप को जीवन का पुण्य समझकर अंगीकृत किया था, चिरविश्रान्ति की गहरी नींद सो गई।

यमुना (तारा) की मनोवेदना भी किशोरी की मनोव्यथा की भाँति ही बहुत गहरी है। व्यापकता में यमुना की अन्तर्पीड़ा किशोरी से कहीं विस्तृत है। किशोरी ने मातृ-पक्ष में चोट खाई थी, यमुना ने प्रणय-पक्ष में विश्वासघात पाया था। उसका जीवन प्रारम्भ से ही समाज-संताप सहता रहा। वह पहले वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य की गई। मंगल ने वहाँ से उद्धार किया किन्तु उसके निष्कलंक प्रणय पर लांछना की लात मार कर वह भी चला गया। पर यमुना ने कठोर प्रेमी के क्रूर दण्ड को अस्वीकार न किया। उसने प्रणय किया था—सच्चा प्रेम, जिसे अपने पूर्णत्व में पूर्ण विश्वास है। उसने अपनी विश्वासनिष्ठा को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बनाए रखा। सुखी जीवनयापन के लिए अपवित्र रास्ते पर चाची (नन्दो) ने उसे चलाना चाहा उसको अस्वीकार कर उसने अपनी असहाय स्थिति को दुःसह बना लिया। चाची द्वारा तिरस्कृत होकर उसने मृत्यु को अंगीकार करना चाहा। पर नियति की कठोरता उसे जीवन-प्रयोग की कठिन परिस्थितियों में डालने के लिए बचा लेती है। जीवन की अनेक विषम स्थितियों में वह अपने प्रणय की पवित्रता अक्षुण्ण रखती है, पर

वह विश्वासघाती मंगल को क्षमा करने में असमर्थ है। विजय-किशोरी के आश्रय में मंगल से उसका पुनर्मिलन हुआ। अपनी संतप्त और लांछित सामाजिक स्थिति के कारण मंगल के प्रति उसका अविश्वास चिरस्थायी हो गया था। उसने मंगल से दूर रहने में ही अपना कल्याण समझा। मंगल ने यमुना के प्रेम का जो निर्मम प्रतिदान दिया था, वह यमुना भुला न सकी। पर विश्वासघाती मंगल के प्रति उसके मन में विद्वेष या क्रोध नहीं है। यदि वह चाहती तो लोक में मंगल की छद्मवेशी सभ्रान्तता का आवरण हटा उसका नग्न रूप प्रकट कर देती, पर ऐसा नहीं करती है। मंगल दूसरी स्त्री गाला से विवाह की सुख चिन्ता में निमग्न है—यह जानकर भी यमुना ने उसके पाखण्ड का भंडाफोड़ करने के लिए उद्धत नन्दो को रोक दिया था। उसने अपनी मनोदशा इन शब्दों में व्यक्त की थी—'नहीं चाची, अब वह दिन चाहे लौट आये पर वह हृदय से कहाँ आवेगा ! मंगल को दुःख पहुँचा कर आघात दे सकूँगी, पर अपने लिए सुख कहाँ से लाऊँगी। चाची ! तुम मेरे दुःखों की साक्षी हो, मैंने केवल एक अपराध किया है—वह यही कि प्रेम करते समय साक्षी नहीं इकट्ठा कर लिया था, और कुछ मंत्रों से कुछ लोगों की जीभ पर उसका उल्लेख नहीं करा लिया था। पर किया था प्रेम। चाची ! यदि उसका यही पुरस्कार है तो मैं उसे स्वीकार करती हूं।' अपने प्रणय के कठोर प्रति-फल को स्वीकार कर उसने जीवन की दुःसह्य संताप-ज्वाला में दग्ध होना पसन्द किया, पर कभी शिकवा न किया। दासीत्व करके उसने कष्ट के दिन विताए, पर अपनी आत्मनिष्ठा अटूट रखी। पाखण्डी मंगल की लोक-सेवा के विपरीत यमुना की मनुष्यता सच्ची मनोवृत्ति है। अपने प्राणों को संकट में डाल उसने विजय के प्राण बचाए, दुर्दिन में उसका साथ दिया और उसकी मृत्यु पर उसके प्रति आंतरिक-वेदना अनुभव की। नियति और समाज कठिन परिस्थितियों में डाल कर भी उसकी आत्मनिष्ठा और आत्मविश्वास को नहीं तोड़ पाये। जो उसे कलंकित और पतित समझते हैं उन्हें भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि 'इन अपवित्रताओं

में भी वह पवित्र, उज्ज्वल और ऊर्जस्वित है—जैसे मलिन वसन में हृदयहारी सौंदर्य !'

घंटी का प्रारम्भिक परिचय एक अल्हड़-चंचल बाल-विधवा के रूप में दिया गया है—'घंटी के कपोलों में हँसते समय गड्ढे पड़ जाते थे। भोली मतवाली आँखें गोपियों के छाया-चित्र उतारतीं और उभरती हुई वयस-संधि से उसकी चंचलता सदैव छेड़छाड़ करती रहती। वह एक क्षण के लिए भी स्थिर न रहती—कभी अंगड़ाई लेती तो कभी अपनी उँगलियाँ चटकाती। आँखें लज्जा का अभिनय करके जब पलकों की आड़ छिप जातीं तब भी भौंहें चला करतीं। तिस पर भी घंटी एक बाल-विधवा है।' व्रजभूमि के स्वच्छन्द-वातावरण ने उसे और भी निःसंकोच बना दिया था। अपने परिहास की मार्मिकता से वह स्वयं बेसुध है, पर दूसरे व्यक्ति भी इस किशोरी बालिका के निःसंकोच स्वभाव की मादकता का प्रभाव टाल नहीं सकते। उसी को लेकर विजय को अपनी माँ से अलग होना पड़ा। विजय के सम्बन्ध से घंटी के मन में द्वन्द्व उठा था, पर निस्सहाय नारी का प्रकृत-धर्म वह कैसे त्याग देती। 'वह अपने मन से पूछती थी—विजय कौन है जो मैं उसे रसाल वृक्ष समझ कर लता के समान लिपटी हूं। फिर उसे आप ही आप उत्तर मिलता—तो और दूसरा कौन है मेरा ? लता का तो यही धर्म है कि जो समीप अवलम्बन मिले उसे पकड़ ले और इस सृष्टि में सिर ऊँचा करके खड़ी हो जाय।' विजय के आधार पर ही हिंस्र मानव-पशुओं की समाजस्थली में वह सुरक्षित थी। उसने विजय को आत्मसमर्पण किया—लोकबाह्य आत्मसमर्पण ! उसका प्रेम भी यमुना के प्रेम की भांति ही समानसम्मति पर जीवित नहीं है। वह जीवित है प्रणय के पूर्णत्व पर, समर्पण के निसर्ग पर ! उसने विजय से कहा था—'मैं तुम्हें प्यार करती हूं। तुम ब्याह करके यदि इसका प्रतिदान दिया चाहते हो तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं। यह विचार तो मुझे कभी सताता ही नहीं। मुझे जो करना है, वही करती हूं, करूँगी भी। घूमोगे घूमूँगी पिलाओगे पिऊँगी, दुलार करोगे हँस लूँगी, ठुकराओगे रो दूँगी। स्त्री

को इन सभी वस्तुओं की आवश्यकता है। मैं इन सबों को समभाव से ग्रहण करती हूं और करूँगी।' अल्हड़ घंटी की जीवन के अनेक गंभीर प्रश्नों पर निखरती तात्विक-दृष्टि को लक्ष्य कर ही विजय ने सोचा था 'यह हँसमुख घंटी संसार के सब प्रश्नों को सहल किए बैठी है।' हत्या के अपराधी विजय से वियुक्त होकर उसका मानसिक-द्वन्द चरम सीमा तक पहुँच जाता है। तभी बाथम की दुष्ट-दृष्टि ने उसे घेरा पर गोस्वामी कृष्णशरण का आश्रय विपत्ति-रक्षा का साधन बना। उसने पुरुष-प्रधान समाज में नारी का उत्पीड़न देखा था; अनुभव भी किया था। 'भारत संघ' को स्थापना पर उसने निश्चय किया कि वह समाज-संतप्त नारी की सेवा में योग देगी। लतिका से उसने कहा था—'बहिन, स्त्रियों को स्वयं घर-घर जाकर अपनी दुखिया बहनों की सेवा करनी चाहिए। पुरुष उन्हें उतनी ही शिक्षा और ज्ञान देना चाहते हैं, जितना उनके स्वार्थ में बाधक न हो। घरों के भीतर अन्धकार है, धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है, और शील तथा आचार के नाम पर रूढ़ियों की। बहनें अत्याचार के परदे में छिपाई गई हैं, उनकी सेवा करूँगी।' उसका यह कथन उस तत्वग्राहिणी दृष्टि का परिचायक है जिसने जीवन के हास्य-रुदन को झेल कर धर्म और समाज के वास्तविक रूप का निर्णय किया था। उसका अल्हड़पन गुरु-गंभीरता में बदल गया। घंटी की प्रारम्भिक चञ्चलता से इस विचार-प्रौढ़ता का साम्य नहीं बैठता—चरित्र अस्वाभाविक ज्ञात होता है। पर इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। जीवन-ज्वाला में दग्ध व्यक्तित्व की पूर्णता विरोध-साम्य का आकर्षण है। इसीलिए घंटी के चरित्र पर मत देते हुए प्रेमचन्द ने लिखा था—'घंटी का चरित्र बहुत ही सुन्दर हुआ है। उसने एक दीपक की भाँति अपने प्रकाश से इस रचना को आलोकित कर दिया है। अल्हड़पन के साथ जीवन पर ऐसी तात्विक दृष्टि, यद्यपि पढ़ने में कुछ अस्वाभाविक मालूम पड़ती है, पर यथार्थ में सत्य है। विरोधों का मेल जीवन का गूढ़ रहस्य है।'

गाला की चरित्र-व्याख्या अपेक्षाकृत संक्षिप्त है, पर प्रारम्भ से ही

उसमें एक निश्चित-पथ का निर्देश है। गाला समीप के प्राणियों में सेवा-भाव, सबसे स्नेह-सम्बन्ध रखना, मनुष्य के लिए पर्याप्त कर्त्तव्य समझती है। अपनी इस मनोवृत्ति की तुष्टि के लिए ही वह बालिकाओं की शिक्षा-दिक्षा में योग देना चाहती है। उसका क्रूरकर्मा पिता बदन इसके विरुद्ध है। गाला की संस्कारनिष्ठ अन्तर्वृत्ति भी जंगली जीवन से सन्तुष्ट नहीं है। उसने बदन से कहा था—'जंगल में तो मेरा मन भी नहीं लगता। मैं बहुत विचार कर चुकी हूं, मेरा इस खारी नदी के पहाड़ी अंचल में जीवन-भर निभने का नहीं।' पुत्री की प्रतिकूलता दुर्दान्त दस्यु सह न सका। वह उसे छोड़कर चला गया। गाला ने मंगल की पाठ्शाला में बालिकाओं को पढ़ाने का कार्य संभाला। मंगल के संसर्ग में उसने उस कोमल भाव का अनुभव किया जिसे प्रेम कहते हैं। मंगल की अनुपस्थिति में वह जिस अभाव की अनुभूति से व्यथित होती है उसका सुगुप्त कारण भी उसे ज्ञात है—'स्त्री का हृदय प्रेम का रंगमञ्च है।' प्रेम को वह स्त्रियों का जन्मसिद्ध उत्तराधिकार मानती है। वह भी इससे वंचित नहीं है। उसे सम्हाल कर उसने केवल एक ओर व्यय किया—मंगल के प्रति। वह अपने विश्वास में असफल न हुई। मंगल की ज्वरावस्था में गाला की सेवा उसे मंगल के अत्यधिक निकट ले गई। उन्हें विवाह-बन्धन में बँधते विलम्ब न हुआ। विवाहोपरान्त 'भारत संघ' के प्रचार और सेवाकार्य में वह मंगल की सहगामिनी थी।

समाज

'कंकाल' में भारतीय समाज, मुख्यतः हिन्दू-समाज का विस्तृत चित्रण है। यह उपन्यास हमारे समाज की पृष्ठभूमि पर उन सब पात्रों का क्रिया-कलाप अंकित करता है, जो धर्म और समाज की मुख्य संस्थाओं से संबंधित हैं। 'कंकाल' में 'हिन्दू-गृहस्थ और साधुसन्त, सेवा-समितियों के सदस्य, विद्यार्थी-वर्ग, चौक के वेश्यालय, गिरजाघर और पादरी, कचहरी और मुसाफिर खाने, आर्य-समाज और सनातम धर्म के प्लेटफार्म, सूफियों की क़व्वाली, ईसाईयों के मिशन की तकरीरें और भक्तों का प्रवृत्तिमर्म

कृष्णधर्म—सब कुछ मिलेगा।' समाज की विशद योजना के अन्तर्गत प्रसाद ने उसकी असत् प्रवृत्तियों को व्यापकता से दिखाया है। समाज की प्रचलित मान्यताओं में घुटते व्यक्ति की विवशता का चित्रण भी हुआ है। उपन्यासकार ने भावप्रवण व्यंग्यात्मक-शैली में अपने सामाजिक मन्तव्यों को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। समाज के बाह्यरूप को भेद कर उसकी दृष्टि समाज के भीतरी कुरूप को हमारे सामने प्रकट करती है। उसने धर्मानुमोदित हिन्दू-समाज की धर्महीनता का चित्रण किया है। 'कंकाल' के धर्मनिष्ठ हिन्दू-समाज के संगठन की विशृंखलता को कथाकार प्रभावात्मक ढँग से व्यक्त करने में विशेष सफल हुआ है। उपन्यास का समाज-दर्शन प्राचीन मान्यताओं के पोषक वर्णाश्रम-धर्म और रक्तशुद्धि-विश्वास पर जिस उग्रता से प्रहार करता है, वह दृष्टव्य है। 'कंकाल' के समाज-दर्शन की विध्वंसात्मक-प्रणाली चुटीली है। वह गले-सड़े समाज-संगठन की प्रत्यक्षानुभूति कराने में अदृष्टपूर्व है।

'कंकाल' की प्रधान सामाजिक-समस्या नारी की समस्या है। उपन्यास के स्त्री-पात्रों में प्रायः सब ही समाज-संतप्त हैं। पुरुष-प्रधान समाज-व्यवस्था में नारी की कष्ट-वेदना को उपन्यासकार ने भावुकता से चित्रित किया है। इसीलिए प्रसाद नारी-समस्या के प्रश्न को केवल प्रेम से सम्बन्धित देख पाए हैं। उनकी भावुकता व्यंग्यप्रधान होकर जहाँ एक ओर तिलमिलाहट उत्पन्न करती है, वहीं दूसरी ओर नारी-समस्या के यथार्थ अंकन करने में असमर्थ है। प्रसाद का नारी-समाज प्रेम की निश्छलता से वञ्चित है। उसकी समस्या प्रेम की समस्या है, उसी के द्वारा उसका जीवन आन्दोलित है। पर नारी-समस्या प्रेम की समस्या मात्र नहीं है। उसका दूसरा पहलू भी है—आर्थिक-स्वातंत्र्य और अधिकार सम्बन्धी। समस्या के दूसरे पहलू पर प्रसाद की दृष्टि नहीं टिकती। जिस प्रकार व्यक्ति की समस्या को समाज की समस्या से एकदम अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार प्रेम की समस्या पेट की समस्या से पृथक नहीं है। विशेष रूप से समाज-प्रताड़ित नारी-वर्ग के चित्रण में

इसका उल्लेख अनिवार्य-सा है। इस ओर कथाकार ने ध्यान नहीं दिया है। फलस्वरूप नारी-समस्या का एकांगी चित्रण ही हो पाया है।

'कंकाल' नारी के उत्पीड़न और संताप को जिस दृष्टि से देखता है वह व्यापक न होकर भी मार्मिक है। नारी-समाज की मनोव्यथा को यमुना के शब्दों में बड़े मर्मस्पर्शी ढँग से उपन्यासकार ने प्रकट किया है—'कोई समाज और धर्म स्त्रियों का नहीं बहन! सब पुरुषों के हैं। सब हृदय को कुचलने वाले क्रूर हैं। फिर भी मैं समझती हूं कि स्त्रियों का एक धर्म है, वह है आघात सहने की क्षमता रखना। दुर्दैव के विधान ने उनके लिए यही पूर्णता बना दी है। यह उनकी रचना है।' अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए प्रसाद ने 'कंकाल' के पुरुष-प्रधान समाज में नारी की दुर्दशा का चित्रण बड़े विस्तार से किया है। यमुना, घंटी, लतिका, नन्दो, किशोरी इत्यादि स्त्रियाँ किसी न किसी रूप में पुरुष की क्रूरता और विश्वासघात से पीड़ित हैं। यमुना को मंगल ने प्रेम के बदले धोखा दिया। घंटी का जीवन-क्रम पुरुषों की कृपा-कटाक्ष से अनिश्चित बना रहा। उसे यदि कोई सच्चा पुरुष मिला तो वह विजय था, शेष बाथम आदि प्रवञ्चक थे। लतिका भी पति से तिरस्कृत नारी है। नन्दो का प्रेम-सम्बन्ध भी लघुकालव्यापी था। किशोरी ने जिस व्यक्ति को अपना बनाया, वह भी अन्त समय में विमुख हो गया। वस्तुतः 'कंकाल' का नारी-समाज पुरुष द्वारा कष्ट-वेदना पाता है—उसे प्रेम का प्रतिदान विश्वासघात के रूप में प्राप्त होता है। इसीलिए भग्नहृदया नारी के मनोद्गार समस्त पुरुष-वर्ग के प्रति अविश्वासजनित संदेह से कठोर हो उठते हैं। यमुना को मंगल से धोखा मिला था, पर व्यथा के अतिरेक में उसने कहा था—'मंगल ही नहीं, सब पुरुष राक्षस हैं, देवता कदापि नहीं हो सकते।' उपन्यास का पुरुष-समाज भी यथेष्ट हृदयहीनता का परिचय देता है। निर्मम विश्वासघात और प्रवञ्चना से परिचालित उसके कार्य-व्यापार नारी-समाज के संताप की सृष्टि में अग्रगण्य हैं। गोस्वामी कृष्णशरण के अतिरिक्त प्रायः सब पुरुष-चरित्र नारी की निगूढ़ वेदना के उत्तरदायी हैं।

इसीलिए 'कंकाल' का नारी-समाज पुरुषों के अत्याचार का पक्का साक्षी बन कर हमारे सामने आया है। नारी-जाति का विश्वास भंग करने वाले पुरुष-समाज के प्रति 'कंकाल' की नारी इन शब्दों में अपनी निःसृत वेदना व्यक्त करती है—'हाय-रे पुरुष, हाय-रे कठोर नारी-जीवन !'

इस उपन्यास में प्रसाद ने लिखा है कि 'पुरुष स्त्रियों पर सदैव अत्याचार करते हैं, कहीं नहीं सुना गया कि अमुक स्त्री ने अमुक पुरुष के प्रति ऐसा ही अन्याय किया। परन्तु पुरुषों का यह साधारण व्यवसाय है—स्त्रियों पर आक्रमण करना………।' स्त्रियों के प्रति पुरुषों के व्यवहार का कारण भी प्रसाद ने 'कंकाल' में स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है—'धर्म और नीति में शिथिल हिन्दुओं का समाज-शासन कठोर हो चला है………दुर्बल स्त्रियों पर ही शक्ति का उपयोग करने की उसके पास क्षमता बच रही है………यह अत्याचार प्रत्येक काल और देश के मनुष्यों ने किया है ………।' यहाँ प्रसाद का यह मत भी स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू समाज में ही नहीं, अन्य समाजों में भी नारी के प्रति अत्याचार होता आया है। ईसाई-समाज के मुख्य स्तम्भ बाथम के सम्पर्क में लतिका और घंटी को दिखाकर प्रसाद ने अपने मत की पुष्टि की है। स्त्रियों को स्वाधीनता का दावा करने वाले ईसाई-समाज में भी पुरुष नारी के प्रति अत्याचार-सम्पादन से नहीं चूकता। लतिका ने यमुना से कहा था—'जहाँ स्वतन्त्रता नहीं है वहाँ पराधीनता का आन्दोलन है और जहाँ यह सब माने हुए नियम हैं वहाँ कौन सी अच्छी दशा है। यह झूठ है कि किसी विशेष समाज में स्त्रियों को कुछ विशेष सुविधा है।' इसी विचार का समर्थन करते हुए गाला ने मंगल से कहा था—'नारी-जाति का निर्माण विधाता की एक झुंझलाहट है। मंगल ! उससे संसार भर के पुरुष कुछ लेना चाहते हैं, एक माता ही कुछ सहानुभूति रखती है, इसका कारण है उसका भी स्त्री होना।'

असुविधाजनक परिस्थितियों में रहकर भी नारी-हृदय केवल स्नेह का भूखा है—प्रसाद का यह मत 'कंकाल' में अनेक बार प्रकट हुआ है।

उन्होंने लिखा है कि 'स्नेहमयी रमणी सुविधा नहीं चाहती, वह हृदय चाहती है।' और होता यह है कि स्नेह के प्रतिदान में उसे विश्वासघात मिलता है—हृदयहीन पुरुष उसके मर्म में शूल चुभा कर मुँह मोड़ लेता है। इसीलिए पुरुषों की दया और सहानुभूति भी निश्छल नहीं है—कम से कम 'कंकाल' का नारी-समाज ऐसा ही सोचता है। यमुना ने लतिका से कहा था—'जब मैं स्त्रियों के ऊपर दया दिखाने का उत्साह पुरुषों में देखती हूं, तो जैसे कट जाती हूं। ऐसा जान पड़ता है कि वह सब कोलाहल, स्त्री-जाति की लज्जा की मेघमाला है। उनकी असहाय परिस्थिति का व्यंग-उपहास है।' जिस परिस्थिति में 'कंकाल' के नारी-पात्रों को दिखाया गया है, उसमें यह पूर्ण सत्य है। पुरुषों का स्वार्थ-प्रेम, विश्वासघात और तिरस्कार, दया और सहानुभूति के आवरण में नहीं छिपता। जिस जाति ने केवल लेना ही सीखा है, उससे सच्ची सहानुभूति और दया की आशा प्रवञ्चना मात्र है। हाँ, उसका दंभ नारी की असहाय स्थिति का उपहास करने के लिए दया का आवरण ढाँक कर प्रकट होता है। यमुना की भाँति ही यदि समस्त नारी समाज इस वस्तुस्थिति को समझ लेता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। भुक्त-भोगी से बढ़ कर किसका प्रमाण सच्चा होता है?

अपनी असहाय स्थिति से भग्न 'कंकाल' की नारी अपनी विवशता भी समझती है। वह जानती है कि समाज में उसके कुछ अधिकार नहीं है। इसीलिए वह उनके प्रति चिन्तित भी नहीं है! पर अपने 'जन्म-सिद्ध उत्तराधिकार' की उपेक्षा वह नहीं कर सकती। प्रसाद ने नारी के हृदय को 'प्रेम का रंगमंच' कहा है। इस रंगमंच पर नारी का प्रकृतिजन्य अधिकार—प्रेम करने का अधिकार अवश्य प्रादुर्भूत होता है। नारी अपने इस अधिकार को नहीं खो सकती क्योंकि उसके लिए यही सब कुछ है। सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण करके भी वह अपने अधिकार का उपभोग करने का निश्चय व्यक्त करती है। घंटी ऐसी ही स्त्री है। उसने विजय से कहा था—'हिन्दू स्त्रियों का समाज ही कैसा है। उसमें कुछ

अधिकार हो तब तो उसके लिए कुछ सोचना-विचारना चाहिए। और जहाँ अन्ध अनुसरण करने का आदेश है, वहाँ प्राकृतिक, स्त्री-जनोचित, प्यार कर लेने का जो हमारा नैसर्गिक अधिकार है—जैसा कि घटनावश प्रायः स्त्रियाँ किया करती हैं—उसे क्यों छोड़ दूँ! यह कैसे हो, क्या हो, और क्यों हो—इसका विचार पुरुष करते हैं। वे करें, उन्हें विश्वास बनाना है, कौड़ी-पाई लेना रहता है और स्त्रियों को भरना पड़ता है। तब, इधर-उधर देखने से क्या! 'भरना है'—यही सत्य है। उसे दिखावे के आदर से ब्याह करके भरा लो या व्यभिचार कह कर तिरस्कार से!' इसीलिए घंटी ने विजय से अपने प्रेम का प्रतिफल विवाह के रूप में नहीं चाहा था। उसने विजय से प्रेम करके ही भर पाया। विवाह का सम्मान और व्यभिचार का तिरस्कार, यथार्थ का रूप नहीं बदल सकते। घंटी ने यथार्थ को स्वीकार के ही अपने प्रेम का अधिकार उपभोग करना चाहा था। उसका यह दृष्टिकोण नारी के आन्तरिक विद्रोह की सूचना देता है। पर प्रसाद का नारी-विद्रोह सामाजिक उतना नहीं है, जितना वैयक्तिक या मनोवैज्ञानिक। घंटी द्वारा 'कंकाल' में यह भलीभाँति व्यक्त हुआ है।

इस समस्या से सम्बन्धित प्रेम और विवाह के प्रश्न पर भी 'कंकाल' का समाज-दर्शन दृष्टिपात करता है। 'प्रसाद विवाह को सामाजिक बन्धन सूत्र-मात्र नहीं मानते। उनके अनुसार 'हृदय का सम्मिलन ही तो ब्याह है।' गोस्वामी कृष्णशरण के शब्दों में विवाह सम्बन्धी प्रसाद का आदर्श स्पष्ट हुआ है—'मेरा तो एक ही आदर्श है। तुम्हें जानना चाहिए कि परस्पर प्रेम का विश्वास कर लेने पर यादवों के विरुद्ध-रहते भी सुभद्रा और अर्जुन के परिणय को पुरुषोत्तम ने सहायता दी। यदि तुम दोनों में परस्पर प्रेम है तो भगवान् को साक्षी देकर तुम परिणय के पवित्र बन्धन में बँध सकते हो।' यहाँ भी प्रसाद हृदय के परिणय की प्राथमिकता और अनिवार्यता पर जोर देते हैं। जहाँ हृदय में परस्पर प्रेम है और आन्तरिक मिलन हो चुका है वहाँ यदि सामाजिक रीति-नीति का उल्लंघन हो

जाता है तो यह विशेष चिन्तनीय नहीं। 'कंकाल' में प्रणय को समाज सम्पन्न विवाह से अधिक महत्व देते हुए प्रसाद ने लिखा भी है—'जो कहते हैं अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखल है, वे भ्रान्त हैं। हृदय का सम्मिलन ही तो ब्याह है। मैं सर्वस्व तुम्हें अर्पण करता हूं और तुम मुझे; इसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यों—मंत्रों का महत्व कितना! झगड़े की, विनिमय की यदि सम्भावना रही तो वह समर्पण ही कैसा! मैं स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हूं, समाज न करे तो क्या!' प्रणय की इस बुद्धिवादी-पुष्टि के साथ ही प्रसाद की स्वच्छन्दवादिता भी उसके महत्व को इन शब्दों में व्यक्त करती है—'हृदय में एक आँधी रहती है, एक हलचल लहराया करती है, जिसके प्रत्येक धक्के में—बढ़ो! बढ़ो! की घोषणा रहती है। वह पागलपन संसार को तुच्छ लघुकण समझ कर उसकी ओर उपेक्षा से हँसने का उत्साह देता है। संसार का कर्त्तव्य, धर्म का शासन, केले के पत्ते की तरह धज्जी-धज्जी उड़ जाता है। वही तो प्रणय है। नीति की सत्ता ढोंग मालूम पड़ती है और विश्वास होता है कि समस्त सदाचार उसी की साधना है·········हाँ वही सिद्धि है, वही सत्य है।'

प्रसाद स्त्री-पुरुष के प्रणय को आदर्श मानते हुए भी यह जानते हैं कि मनुष्य विभिन्न उपकरणों से बना है और उस स्थिति में आदर्श का निर्वाह सम्भव नहीं। इसीलिए विवाह के रूप में समझौता करना पड़ता है। 'कंकाल' में प्रसाद ने लिखा है—'जगत की एक जटिल समस्या है—स्त्री-पुरुष का स्निग्ध मिलन। इसके लिए समाज ने भिन्न-भिन्न समय और देशों में अनेक प्रकार की परीक्षाएँ कीं, किन्तु वह सफल न हो सका। रुचि, मानव-प्रकृति, इतनी विभिन्न है कि वैसा युग्म-मिलन विरला होता है·········स्वतन्त्र चुनाव, स्वयंवरा, यह सब सहायता नहीं दे सकते। इसका उपाय एक मात्र समझौता है, वही तो ब्याह है······।' उपन्यास के अन्य स्थलों पर भी प्रसाद स्त्री-पुरुष को संसार का सहनशील साझीदार होने का संदेश देते हैं। लतिका द्वारा उन्होंने कहलाया है—'मन इतना

भिन्न उपकरणों से बना हुआ है कि समझौते पर ही संसार के स्त्री-पुरुष का व्यवहार चलता हुआ दिखाई देता है।' अपनी अन्य कृतियों में प्रसाद ने विवाह के कठोर पक्ष पर भी विचार किया है, पर 'कंकाल' में वे पुरुष-नारी के प्रणय और विवाह के रूप में समझौते तक ही अपनी दृष्टि डालते हैं।

'कंकाल' के समाज-चित्रण में प्रसाद ने रूढ़ि और संस्कारग्रस्त सामाजिक मान्यताओं की कठोरता दिखाई है। जो समाज वेश्याओं को प्रश्रय देता है, स्त्रियों का व्यवसाय करता है, वही अपनी झूठी मर्यादा स्थिर रखने के लिए व्यवस्था-अतिक्रमण करने वालों को कठोर दण्ड भी देता है। प्रसाद ने इस सम्बन्ध में व्यंग्य भी किया है! उन्होंने दिखाया है कि समाज में सब वर्णसंकर हैं। रक्तशुद्धि का दावा निस्सार है। पर समाज अवैध-सन्तानों का तिरस्कार करता है। जिस समाज में वर्णशुद्धि का प्रमाण नहीं मिलता, वही वर्णसंकरों के प्रति कठोर व्यवहार करता है! उसका यह दंभ उसकी व्यंग्य-स्थिति को छिपा नहीं सकता। चाची नन्दो स्वयं वर्णभ्रष्ट होकर भी तारा की माँ पर लांछना लगाती है—'तारा की माँ ही कौन कहीं की भण्डारीजी की व्याही धर्मपत्नी थी?' अवैध सन्तानों के प्रति मंगल की मनोवृत्ति भी बहुत-कुछ ऐसी ही थी। उसके वर्णभ्रष्ट होने के कई प्रमाण प्राप्त हैं फिर भी वह तारा और उसकी सन्तान का तिरस्कार करके चला जाता है। वह सोचता है—'तारा दुराचारिणी की सन्तान है, वह वेश्या के यहाँ रही फिर मेरे साथ भाग आई, मुझसे अनुचित सम्बन्ध हुआ और अब वह गर्भवती है! मैं आज व्याह करके कई कुकर्मों से कलुषित संतान का पिता कहलाऊँगा।' कितना गहरा व्यंग्य है। जिस व्यक्ति की अपनी उत्पत्ति की वैधता अनिश्चित है, वही दूसरों का विचार करने बैठा है। ऐसा ही समाज है। रक्त-शुद्धि और वर्णाश्रम उसकी मान्यता है, पर उसका भीतरी रूप न तो शुद्ध है और न वर्णनिष्ठ। फिर भी वह अपनी निस्सार मर्यादा की रक्षा के निमित्त कठोरतम दण्ड की व्यवस्था करता है। दंभपूर्ण आत्म-प्रवञ्चना का इससे

बड़ा उदाहरण और क्या होगा ?

प्रसाद 'कंकाल' में बड़े विस्तार से चित्रित करते हैं कि समाज का आंतरिक रूप कुरूप है। वह बाहर जैसा है, वैसा ही भीतर नहीं है। यमुना ने मंगल से कहा भी था—'यही कभी-कभी मैं भी विचारती हूं कि संसार दूर से नगर, जनपद सौधश्रेणी, राजमार्ग और अट्टालिकाओं से जितना शोभन दिखाई पड़ता है, वैसा ही सरल और सुन्दर भीतर नहीं है। जिस दिन मैं अपने पिता से अलग हुई, ऐसे-ऐसे निर्लज्ज और नीच मनोवृत्तियों के मनुष्यों से सामना हुआ जिन्हें पशु भी कहना उन्हें महिमान्वित करना है।' इसी भीतरी कुरूपता का सच्चा चित्र 'कंकाल' दिखाता है! इसी सम्बन्ध में प्रसाद वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य की स्त्रियों की असहायावस्था से सहानुभूति दिखाते हुए भी उनकी कुरूपता की चर्चा किए बिना नहीं रहते। उपन्यास में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—'संध्या में बैठकर मनुष्य-समाज की अशुभ कामना करना, उसे नरक के पथ की ओर चलने का संकेत बताना, फिर उसी से अपनी जीविका।' वेश्यावृत्ति ही नहीं, समाज की सब संस्थाएँ गली-सड़ी हैं। उनके बाहरी रूप को भेद कर भीतर देखने पर विकृतियों पर ही दृष्टि पड़ती है। यह विकृतियाँ 'कंकाल' के समाज-दर्शन को अत्यधिक स्पष्ट रूप प्रदान करती हैं।

'कंकाल' में प्रसाद ने धार्मिक-दंभ, पाखण्ड और अत्याचार का चित्रण भी किया है। धर्म का पाखण्ड उपन्यासकार को असह्य है, पर उसकी आलोचना भी वह भावात्मक ढंग से करता है जिससे समस्या का निरूपण स्पष्ट नहीं हो पाता है। पवित्र-अपवित्र, शुद्ध-अशुद्ध की समस्या सम्बन्धित धार्मिक-दंभ का यमुना और निरंजन को लेकर चित्रण किया गया है। अपवित्र मानकर यमुना को निरंजन देवालय में घुसने नहीं देता। उसकी निष्ठुरता से मर्माहत यमुना ने कहा था—'हिन्दू समाज ...... भौतिक वस्तुओं में तो मोटा भाग ही चुका है, भगवान पर भी एकान्त भाग का प्रयत्न करता है!' पर भगवान् पर एकान्त भाग

का साहस करने वाले निरञ्जन जैसे दंभी-पाखण्डी व्यक्ति क्या स्वयं पवित्र हैं? नहीं। यमुना की तुलना में तो वह और भी अपवित्र हैं। फिर भी समाज उनका है, धर्म और भगवान् उनका है। जो सच्चे और ईमानदार हैं, वे ही त्याज्य हैं। हिन्दू-धर्म की इस व्यंग्यात्मक-दशा को लक्ष्य करके प्रसाद ने अनेक बार 'कंकाल' में इसकी खिल्ली उड़ाई है। प्रसाद ने यह भी चित्रित किया है कि दंभी-धर्म के बोझ से दबे व्यक्ति का विकास नहीं हो पाता। विजय के द्वारा अनेक स्थलों पर कथाकार अपना मन्तव्य स्पष्ट करता है। वह समाज की भाँति ही धर्म से व्यक्ति की स्वतन्त्रता की माँग करता है। वस्तुतः हिन्दू-समाज और धर्म परस्पर इतने मिले हुए हैं कि समाज का प्रश्न धर्म के प्रश्न से अलग नहीं किया जा सकता। हिन्दू समाज की रीढ़ धर्म रहा है। इसीलिए धर्म और समाज की आलोचना एक साथ ही संभव है। प्रसाद जहाँ समाज पर विचार व्यक्त करते हैं वहाँ धार्मिक-संस्थाओं का प्रभाव भूल नहीं जाते और धर्म पर विचार करते समय उसका समाजव्यापी प्रभाव अंकित करते हैं। इसीलिए उनका धर्म और समाज-चिन्तन प्रायः साथ ही चलता है।

प्रत्येक काल और देश में धर्म के नाम पर शोषण हुआ है। आज भी हिन्दू-धर्म की शोषणवृत्ति यथावत् कायम है। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में धर्म के शोषण का भण्डाफोड़ किया था। प्रसाद ने 'कंकाल' में धर्म की शोषणवृत्ति की प्रेमचन्द के ढँग पर विस्तृत आलोचना नहीं की है किन्तु हमारे धार्मिक जीवन की विडम्बना से वे भलीभाँति परिचित हैं। अनेक स्थल पर उन्होंने धर्म की आड़ में होने वाली लूट-खसोट को लक्ष्य करके मार्मिक उक्तियाँ लिखी हैं। झूठी पत्तलों की दरिद्र जनता द्वारा लूट देख कर किशोरी सोचती है—'भीतर जो पुण्य के नाम पर—धर्म के नाम पर—गुलछर्रे उड़ रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है, यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान् तुम अन्तर्यामी हो!' इससे भी आगे बढ़ कर प्रसाद ने लिखा है—'जो हमारे दान के अधिकारी हैं, धर्म के ठेकेदार हैं, उन्हें इसीलिए तो समाज देता

है कि वे उसका सदुपयोग करें; परन्तु वे मन्दिरों में, मठों में, बैठे मौज उड़ाते हैं—उन्हें क्या चिन्ता है कि समाज के कितने बच्चे भूखे-नंगे और अशिक्षित हैं।' इन शब्दों में प्रसाद की सामाजिक-चेतना का परिचय मिलता है। कोई भी साहित्यकार—अपने दायित्व को समझने वाला साहित्यकार किसी प्रकार के पाखण्ड और अत्याचार से समझौता नहीं कर सकता। 'कंकाल' का लेखक भी समसामयिक धार्मिक-जीवन की विडम्बना को लक्ष्य करके ही लिखता है—'जिन्हें आवश्यकता नहीं उनको बिठा कर आदर से भोजन कराया जाय, केवल इस आशा से कि परलोक में वे पुण्य संचय का प्रमाण-पत्र देंगे, साक्षी देंगे! और इन्हें, जिन्हें पेट ने सता रक्खा है, जिनको भूख ने अधमरा बना दिया है, जिनकी आवश्यकता नंगी होकर वीभत्स-नृत्य कर रही है,—वे मनुष्य, कुत्तों के साथ जूठी पत्तलों के लिए लड़ें, यही तो तुम्हारे धर्म का उदाहरण है!' 'कंकाल' में उपन्यासकार ने हमारे धार्मिक जीवन की कुरूपता, दांभिकता और विडम्बना का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। इस विषय पर प्रसाद की व्यंग्यपूर्ण उक्तियाँ बड़ी चुटीली हैं। वे हिन्दू-समाज के मेरुदण्ड धर्म के नग्न रूप को उघाड़ देते हैं। 'कंकाल' की ध्वंसात्मक-प्रणाली चारों ओर फैले कूड़े-करकट और विकृतियों को दिखाने में अद्वितीय है।

पाप और पुण्य की समस्या धर्म की एक विशिष्ट समस्या है। पाप क्या है? पुण्य क्या है? प्रसाद पाप-पुण्य को इस दृष्टि से मीमांसा करते हैं—'पाप और कुछ नहीं है जिन्हें हम छिपा कर किया चाहते हैं उन्हीं कर्मों को पाप कह सकते हैं; परन्तु समाज का एक बड़ा भाग उसे यदि व्यवहार्य बना दे तो वही कर्म हो जाता है, धर्म हो जाता है। देखती नहीं हो, इतने विरुद्ध मत रखने वाले संसार के मनुष्य अपने-अपने विचारों में धार्मिक बने हैं, जो एक के यहाँ पाप है वही दूसरे के लिए पुण्य है।' पाप-पुण्य की समस्या पर नाना मनीषियों ने नाना प्रकार से विचार किया है। प्रसाद के मत को 'कंकाल' का मन्तव्य और भी स्पष्ट कर देता है। 'पाप-पुण्य की सत्ता आपेक्षिक और व्यावहारिक है। उसकी मौलिक

सत्ता जरा भी नहीं है।' पर व्यावहारिक सत्ता होने से कुछ कृत्यों को पाप माना ही जायगा। जो वस्तु मानी जायगी उसके प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण भी होगा। पाप के प्रति 'कंकाल' में दो दृष्टिकोण व्यक्त हुए हैं। एक दृष्टिकोण पश्चात्ताप का समर्थक है। ईसाई धर्मानुयायी पादरी जॉन इसका प्रतिनिधि है। उसका विचार है कि पश्चात्ताप की अग्नि में पाप की कालिमा जल जाती है। उसने कहा है—'तुम मनुष्य के पश्चात्तापपूर्ण एक दीर्घ निश्वास का मूल्य नहीं जानती हो।' पर दूसरा दृष्टिकोण भी है। कर्मफल में विश्वास करने वाली सरला ने इसे व्यक्त किया है। उसने कहा है—'भगवान् के क्रोध को, उनके न्याय को, मैं आंचल पसार कर लेती हूं........मैं अपने कर्मफल को सहन करने के लिए वज्र के समान सबल, कठोर हूं।' प्रसाद ईसाई धर्म के पश्चात्ताप द्वारा प्रायश्चित्त में विश्वास नहीं करते। उन्होंने लिखा है—'हम हिन्दुओं का कर्मवाद में विश्वास है। अपने अपने कर्मफल तो भोगने ही पड़ेंगे।' यदि यह सत्य हो कि पापों का पश्चात्ताप द्वारा प्रायश्चित्त होने पर यीशु उन पाप-कर्मों को क्षमा करता है, तब भी लोक में इसका प्रचार अवांछनीय है, क्योंकि इससे 'मनुष्य को पाप करने का आश्रय मिलेगा। वह अपने उत्तरदायित्व से छुट्टी पा जायगा।' इसीलिए प्रसाद कर्मवाद को 'जो जस करै सो तस फल चाखा' उक्ति में विश्वास रखते हैं।

'कंकाल' के लेखक ने आर्थिक-समस्या को व्यापक सामाजिक पृष्ठ-भूमि नहीं दी है क्योंकि उसका उद्देश्य ही दूसरा है। वह समाज और धर्म के खोखले रूप को दिखाने में ही व्यस्त है; अर्थ-विषमता उसे आकृष्ट नहीं करती। जहाँ उसने भुखमरी और दरिद्रता का चित्रण किया है, वह धर्म और समाज के प्रसंग में। प्रेमचन्द के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से उसका दृष्टिकोण भिन्न है। प्रसाद ने दरिद्रता और भूख की ज्वाला जलते प्राणियों के प्रति सहानुभूति अवश्य दिखाई है किन्तु इसका लोकव्यापी प्रभाव अंकित नहीं कर पाये हैं। उन्होंने लिखा है—'इस देश को दरिद्रता कैसी विकट है—कैसी नृशंस है! कितने ही अनाहार

मरते हैं!' फिर 'कंकाल' में ही उन्होंने इसका चित्रण किया है—'दासियाँ जूठी पत्तल बाहर फेंक रही थीं। ऊपर की छत से पूरी और मिठाइयों के टुकड़ों से लदी हुई पत्तलें उछाल दी जाती थीं। नीचे कुछ अछूत डोम डोमनियाँ खड़ी थीं, जिनके सिर पर टोकरियाँ थीं, हाथ में डंडे थे—जिनसे वे कुत्तों को हटाते थे और आपस में मार-पीट, गाली-गलौज करते हुए उस उच्छिष्ट की लूट मचा रहे थे—वे पुश्त दर पुश्त के भूखे!' उपन्यासकार इसको 'पुण्य का उत्सव' कह कर व्यंग्य करता है। उसने दशाश्वमेध-घाट पर लोटती दरिद्रता पर भी दृष्टिपात किया है किन्तु यह वह अर्थ-विषमता दिखाने से अधिक धर्मनिष्ठ-समाज पर व्यंग्य करने के लिए करता है।

'कंकाल' में प्रसाद ने हिन्दू-समाज के दुर्बलताग्रस्त रूप को विस्तार से दिखाया है। हिन्दू-धर्म और समाज का चित्रण बुद्धिवाद से प्रभावित है। इस दृष्टि से 'कंकाल' की चिन्ताधारा प्रसाद-साहित्य में विशिष्ट और पृथक स्थान रखती है। उनकी मूलवृत्ति से 'कंकाल' एक जुदा कृति है। बड़े सशक्त एवं व्यंग्यमय ढंग से उपन्यासकार हमारे समाज के खोखले-निस्सार रूप पर आक्रमण करता है। विजय के शब्दों में प्रसाद की विचारधारा अत्यधिक स्पष्ट हो उठी है—'क्या हिन्दू होना परम सौभाग्य की बात है? जब उस समाज का अधिकांश पददलित और दुर्दशाग्रस्त है, जब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची—उसकी संस्कृति विडम्बना, उसकी संस्था सारहीन, और राष्ट्र-बौद्धों के शून्य के सदृश बन गई है; जब संसार की अन्य जातियाँ सार्वजनीन भ्रातृभाव और साम्यवाद को लेकर खड़ी हैं तब आपके इन खिलौनों से भला उसकी संतुष्टि होगी?·········समग्र संसार अपनी स्थिति रखने के लिये चंचल है। रोटी का प्रश्न सबके सामने है, फिर भी मूर्ख हिन्दू अपनी पुरानी असभ्यताओं का प्रदर्शन कराकर पुण्य-संचय किया चाहते हैं।' वस्तुतः हिन्दू-समाज के सड़े-गले रूप के प्रति प्रसाद का विद्रोह बार-बार 'कंकाल' में फूट पड़ा है। उपन्यासकार उसकी निषेधात्मक

समाज-व्यवस्था के प्रति भी अपना क्षोभ प्रकट करते हुए लिखता है—'पर हिन्दुओं के पास निषेध के अतिरिक्त और भी कुछ है ?—यह मत करो, वह मत करो, पाप है ! जिसका फल यह हुआ कि हिन्दुओं को, पाप को छोड़ कर पुण्य कहीं दिखलाई ही नहीं पड़ता।' निषेधात्मक धर्म या समाज-व्यवस्था शासन-सुविधा में सहायक होने पर भी स्वस्थ व्यवस्था नहीं मानी जा सकती। मनुष्य की प्रवृत्ति को निषेध-व्यवस्था से रोका जा सकता है, प्रवृत्ति कभी नष्ट नहीं होती। इस ऊपरी रोक-थाम का परिणाम होता है, भीतरी ह्रास। हिन्दू समाज की भीतरी निस्सारता और कुरूपता का यथेष्ट दायित्व इस निषेधात्मक समाज-व्यवस्था पर है। प्रसाद ने विजय के शब्दों द्वारा अपने मत को अधिकाधिक स्पष्ट कर दिया है—'तुम स्वयं प्राचीन निषेधात्मक धर्म्म के प्रचारक बन गए। कुछ बातों के न करने से ही यह प्राचीन धर्म सम्पादित हो जाता है—छुओ मत, खाओ मत, ब्याहो मत, इत्यादि इत्यादि।' वस्तुतः बुद्धिवाद की कसौटी पर यह समाज-प्रणाली खरी नहीं उतरती। रूढ़ि और कुसंस्कारग्रस्त प्राचीन व्यवस्था बुद्धिवादी निर्णय-पद्धति से मेल नहीं खा सकती। इसीलिये प्रसाद 'कंकाल' में 'संशोधक समाज' की चर्चा करते हैं—'उसका उद्देश्य है—जिन बातों में बुद्धिवाद का उपयोग न हो सके उनका खण्डन करना और तदनुकूल आचरण करना..........इसी प्रकार इन प्राचीन कुसंस्कारों का नाश करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं, क्योंकि ये ही रूढ़ियाँ आगे चलकर धर्म का रूप धारण कर लेती हैं। जो बातें कभी देश, काल, पात्रानुसार प्रचलित हो गई थीं, वे सब माननीय नहीं, हिन्दू-समाज के पैरों में ये बेड़ियाँ हैं।' निषेधात्मक समाज-व्यवस्था की रूढ़िप्रियता और कुसंस्कार-प्रेम के कारण वर्तमान हिन्दू-जीवन में जो खोखलापन आ गया है, उसी को लक्ष्य कर उपन्यासकार 'कंकाल' के अनेक स्थलों पर मर्मभेदी-व्यंग्य करता है। 'कंकाल' के सामाजिक-व्यंग्य की आक्रामक-शैली विद्रोही विचारों को प्रमुख प्रश्रय देती है। वैसे प्राचीन-परम्परा और मान्यताओं के पक्ष में मंगल के द्वारा कथाकार कुछ

स्थलों पर विचार-वितर्क करता है, पर उपन्यास के उद्देश्य को दृष्टि में रखकर यह मानना उचित है कि व्यंगलिप्त विद्रोही विचार ही उसके अधिक निकट हैं। 'कंकाल' का समाज-दर्शन इन्हीं से ओत-प्रोत है। वह इन विचारों की पुष्टि करता है।

'कंकाल' में सब पात्रों को वर्णसंकर सिद्ध कर प्रसाद वर्ण-व्यवस्था के मूल में कुठाराघात करते हैं। वर्तमान वर्ण-व्यवस्था के प्रति उनको आस्था नहीं है। वर्ण-व्यवस्था के इतिहास से परिचित होने के कारण ही प्रसाद का यह कथन है कि 'वर्ण-व्यवस्था का विभाजन मूल रूप में जनता का कर्म विभाजन है' परन्तु आज उसने जन्मतः विभाजन का रूप ग्रहण कर लिया है। प्रसाद ने लिखा है—'वर्णभेद सामाजिक जीवन का क्रियात्मक इतिहास है। यह जनता के कल्याण के लिए बना, परन्तु द्वेष की सृष्टि में, दंभ का मिथ्या गर्व उत्पन्न करने में, यह अधिक सहायक हुआ है। जिस कल्याणबुद्धि से इसका आरंभ हुआ, वह न रही, गुण-कर्मानुसार वर्णों की स्थिति नष्ट होकर, अभिजात्य के अभिमान में परिणत हो गई।' फलस्वरूप 'भारतवर्ष आज वर्णों और जातियों के बन्धन में जकड़ कर कष्ट पा रहा है और दूसरों को कष्ट दे रहा है...... यह महत्व का संस्कार अधिक दिनों तक प्रभुत्व भोग कर खोखला हो गया है......प्रत्येक व्यक्ति अपनी छूँछी महत्ता पर इतराता हुआ दूसरे को नीचा—अपने से छोटा—समझता है, जिससे सामाजिक-विषमता का विषमय प्रभाव फैल रहा है।' यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक विषमता का कारण प्रसाद जाति-वर्ण भेद मानते हैं। उनका यह दृष्टिकोण प्रेमचन्द प्रभृति समाजशास्त्रीय कथाकारों से सर्वथा भिन्न है जो अर्थ विषमता और वर्ग-भेद को सामाजिक वैषम्य का मूल समझते हैं। 'कंकाल' में वर्ण-व्यवस्था के विघटन द्वारा कथाकार बड़े सशक्त ढंग से इसकी निस्सारता सिद्ध करता है। उसने ऐसी प्रणाली का प्रयोग किया है जिससे वर्तमान वर्णगत ऊँच-नीच भेद का अन्त हो जाता है और प्राणीमात्र एक कामना के प्रवाह में बहता दृष्टिगत होता है। 'कंकाल' का समाजव्यापी

व्यंग्य ऊँच-नीच वर्ण-भेद की असत्यता प्रमाणित करने के लिए समस्त पात्रों को वर्णसंकर चित्रित करता है। प्रसाद का वर्णविषयक यह मन्तव्य 'कंकाल' की विघटनात्मक-सृष्टि में बड़े सशक्त ढँग से व्यक्त हुआ है। निस्सार महत्ता के दंभ में फँसे रूढ़िवादी समाज पर प्रसाद का यह व्यंग्य-प्रहार साहित्य की चिन्ताधारा में निजी विशेषता रखता है।

उद्देश्य

'कंकाल' का लक्ष्य नितान्त स्पष्ट है। इस उपन्यास में समाज के खोखले और गले-सड़े रूप की निस्सारता पर व्यंग्य किया गया है। 'कंकाल' के लेखक का मन्तव्य इतना स्पष्ट है कि इसे तटस्थ दृष्टि से लिखा उपन्यास मानना वास्तविकता की उपेक्षा करना है। प्रकाशकीय व्यक्तव्य में लिखा गया है—'अब तक के उपन्यासों का उद्देश्य रहा है या तो मनोरञ्जन, या उन आदर्श-चरित्रों को चित्रित कर देना, जो समाज-द्वारा मनोनीत हुए हैं। किन्तु, 'कंकाल' दिखलाता है कि समाज जिन्हें अपने दुर्बल पैरों से ठुकरा देने की चेष्टा करता है, उनमें कितनी महत्ता छिपी रहने की संभावना है और आदर्श मानकर जिनका गुणगान करता है, उनमें पतन भी हो सकता है। फिर भी चरित्रों के आदर्श और पतन के सम्बन्ध में लेखक ने अपना कोई मत नहीं उपस्थित करना चाहा है, वरन् वर्तमान काल की सामाजिक, धार्मिक और सांसारिक मनोवृतियों का जो सम्मिश्रित द्वन्द चल रहा है उसे तटस्थ दृष्टि से उसका क्रियात्मक रूप चित्रित कर देने के लिये ही कल्पित पात्रों के चरित्र में तदनुकूल घटनाएँ संघटित कर दी हैं, एवं किसी लक्ष्य विशेष के लिये 'प्रोपोगंडा' न करके, पतन और आदर्श की परिभाषा निश्चित करने का भार पाठकों पर ही छोड़ दिया है।' इस मत से पूर्ण सहमत होना-कठिन है। 'कंकाल' का उद्देश्य, उसकी ध्येयोन्मुख-विचारधारा और बौद्धिकता इतनी स्पष्ट है कि उसे तटस्थ साहित्यिक कृति कहना असंगत होगा। 'कंकाल' का प्रयोजन, 'कंकाल' का लक्ष्य, 'कंकाल' का व्यंग्य, 'कंकाल' के लेखक की रुचि-अरुचि यह सब इतनी स्पष्टता से उपन्यास में अंकित हो गई है कि

उन्हें भुलाना असम्भव है।' 'प्रोपेगंडा' से डरने की चाल हिन्दी में उन दिनों बढ़ी-चढ़ी थी। किसी भी विचार-प्रधान बौद्धिक रचना को 'प्रचारात्मक' कह कर निंदनीय साहित्य में गिना देना मामूली सी बात थी। किन्तु कला से ऊपर जिस शक्तिशाली चीज के लिए सचेत पाठक लालायित रहता है, वह उसका बौद्धिक-पक्ष होता है। यही 'कंकाल' का प्राण है। उसका उद्देश्य उसके समाज-चिन्तन में यथेष्ट स्पष्ट है। उपन्यासकार का मत जानने के लिये विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। समाज के व्यंग्यात्मक चित्रण में प्रसाद की मन्तव्य-प्रतिष्ठा भलीभाँति हो जाती है। इसे आप 'प्रोपेगंडा' न भी कहें, पर कंकाल' का लक्ष्य और उसकी चिन्ताधारा उसकी ध्येयोन्मुखता की अकाट्य साक्षी है।

'कंकाल' का उद्देश्य उसके समाज-चिन्तन में स्पष्ट है। हिन्दू-समाज और धर्म की रूढ़िवादी मान्यताओं की कथाकार व्यंग्य-प्रधान दृष्टि से आलोचना करता है। उसने दिखाया है कि धार्मिक पवित्रता में विश्वास करने वाले अधार्मिक और अपवित्र हैं, वर्णवर्चस्व और रक्तशुद्धि की मान्यताओं का पोषक समाज वर्णसंकर है। प्रसाद ने इसमें बताया है कि हमारा समाज निस्सार महत्ता के दंभ में फँसा है। उसका सब कुछ खोखला है; वह गल-सड़ गया है। धार्मिक पवित्रता के दंभ से जर्जर उसकी प्राचीन मान्यताएँ ईमानदारी और सचाई के प्रतिकूल पाखण्ड को प्रश्रय दे रही हैं। यहाँ कौन धार्मिक है? कौन पवित्र है? कौन वर्ण-शुद्ध है? 'कंकाल' का उत्तर है—कोई नहीं! अपने मन्तव्य की पुष्टि के लिये प्रसाद वर्तमान जीवन के अतिरिक्त ऐतिहासिक-परम्परा का संकेत भी करते हैं। इसीलिए मंगल और गाला के चरित्र-चित्रण में प्रसाद ने उनकी वर्णसंकरता को इतिहाससिद्ध किया है। उन्होंने दिखाया है कि वर्णसंकरता दीर्घकालव्यापिनी है। वह आज की वस्तु नहीं, कल की भी नहीं; अपितु बहुकाल से चली आ रही है। इस प्रकार कथाकार ऊँच-नीच पोषक भेदबुद्धि पर गहरा प्रहार करता है। वह हमारे धार्मिक जीवन की विडम्बना पर भी व्यंग्य करता है।

वस्तुतः धर्म दुर्बल और पाखण्डी व्यक्तियों के लिये आवरण बन गया है जिसकी ओट से लोकश्रद्धा अर्जित की जाती है। मंगल ऐसा ही व्यक्ति था। उसकी धर्मनिष्ठा, त्याग और सेवा उसकी दुर्बलता और भ्रमजर्जरता को छिपाने में विशेष सहायक हुए। समाज और धर्म के जड़-बन्धनों ने व्यक्ति की चेतना और सामर्थ्य को पंगु कर दिया है। इससे प्राणी के व्यक्तित्व की विकास-संभावनाएँ नष्ट हो जाती हैं। विजय ऐसे सच्चे और ईमानदार व्यक्ति को समाज का तिरस्कार और लाँछना झेलनी पड़ी, जब कि पाखण्डप्रश्रयी मंगल ने समाज की श्रद्धा बटोरने में सफलता प्राप्त की। हिन्दू धार्मिक और सामाजिक जीवन की इससे बड़ी विडम्बना और क्या होगी? वर्तमान जीवन में उसकी निस्सारता का प्रमाण और क्या चाहिए? कथाकार का विश्वास कि है आज हम धर्म और समाज के ढाँचे को—शव को—लेकर रो रहे हैं। वह समाज-संस्था के दोष, निरर्थक जड़-मान्यताओं और रूढ़ियों की अदृष्टपूर्व व्यंग्यात्मक-आलोचना करता है। 'कंकाल' की समस्त शक्ति इसी में दृष्टिगत होती है। उपन्यास का स्थायी-प्रभाव न कथावस्तु में है, न पात्र सृष्टि में—वह उस सामाजिक व्यंग्य में है जो उपन्यास के आदि से अन्त तक व्याप्त है।

तितली

'तितली' (१९३४) प्रसाद की द्वितीय औपन्यासिक कृति है। इसमें प्रसाद की सामाजिक विचारधारा का झुकाव रचनात्मकता की ओर अधिक है। 'कंकाल' की यथार्थोन्मुखता के विपरीत 'तितली' में आदर्शवाद की विजय अंकित की गई है। ग्राम-सुधार चित्रण में प्रसाद की रचनात्मक लोक-चिन्ता पर आदर्शवाद का प्रभाव स्पष्ट है। आश्चर्य नहीं कि 'तितली' में प्रसाद प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' से प्रभावित हुए हों। 'तितली' की वस्तु सुलझी हुई है और पात्र जीवन के अधिक निकट हैं। शैली में भी काव्यात्मकता की अतिशयता नहीं है; पर मूलरूप में वह भावात्मक अधिक है, विश्लेषणात्मक कम।

कथा

शेरकोट एक ऊँचे टीले पर बना छोटा-सा मिट्टी का एक ध्वस्त दुर्ग था। उसके दो ओर नाले की खाई है और एक ओर गंगा। उसका निर्माण मध्ययुग में हुआ था जब प्रतिदिन के आक्रमणों से रक्षा के लिए सामान्य भूमिपतियों को भी दुर्ग की आवश्यकता थी। शेरकोट उन्हीं विगत दिनों की भग्नावशेष स्मृति है। मधुबन इसी शेरकोट का जमींदार था। कालक्रम में उसके पास तीन बीघे खेत और कोट का खंडहर रह गया था। शेरकोट के पतन के साथ वहाँ की प्रजा भी जीविका उपार्जन के लिए इधर-उधर चली गई थी। केवल मल्लाही टोले में कुछ कहार और मल्लाह बच रहे थे। उनके हृदय में शेरकोट के गत वैभव की स्मृतियाँ

उसके ऐश्वर्य की साक्षी थी। मधुबन के लिए वंश-गौरव का अभिमान छोड़कर, मुकदमे में सब-कुछ हार कर जब उसके पिता मर गए, तब उसकी विधवा बहन राजकुमारी (राजो) ने आकर भाई को सम्हाला था। अपने सम्पन्न ससुराल में तिरस्कृत पड़े रहने की अपेक्षा दरिद्र भाई के दुख का भागी बनना उसने स्वीकार किया।

शेरकोट के पास ही बनजरिया थी। यहाँ वृद्ध रामनाथ अपनी पोषित कन्या तितली के साथ रहता था। तितली के पिता का नाम देवनन्दन था। वह नील की कोठी के मालिक वार्टली साहब का किसान-आसामी था। रामनाथ उसी का आश्रित ब्राह्मण था। उसके अन्न-दान के सहारे रामनाथ काशी में विद्यार्जन करता था। काशी से लौटने पर उसने देखा कि देवनन्दन को नील कोठी का पियादा पकड़े लिए जा रहा है। किसी प्रकार रुपया चुकता करके रामनाथ ने अपने आश्रयदाता को विपत्ति से बचाया। तत्पश्चात रामनाथ गाँव छोड़ कर देशाटन के निमित्त चल पड़ा। वर्षों तक भ्रमण करता वह दक्षिण जा पहुँचा। दक्षिण में उन दिनों भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था। अपने गाँव से संत्रस्त देवनन्दन पत्नी और पुत्री के साथ इस ओर आ पड़ा था। पत्नी राह में मर गई। पुत्री के साथ देवनन्दन अकाल-पीड़ित क्षेत्रों में भीख माँग कर निर्वाह करता। पर वहाँ भीख कहाँ? देवनन्दन और उसकी कन्या क्षुधा से बेजान पड़े थे। रामनाथ ने उन्हें पहचाना। अपनी पुत्री रामनाथ को सौंप कर देवनन्दन मर गया। उस बालिका को लेकर रामनाथ गाँव लौट आया और बनजरिया में कुटी बना कर रहने लगा। कालक्रम में बालिका तितली युवती हुई। रामनाथ के पास मधुबन प्रायः आता-जाता था। तितली और मधुबन में परस्पर स्नेह हो चला।

यह इलाका धामपुर ताल्लुके में पड़ता था। इन्द्रदेव इसके युवक जमींदार हैं। वह कुछ दिन हुए विलायत से वापस आए हैं। उनके साथ शैला नामक एक अंग्रेज युवती भी आई थी। उसकी दयनीय-दरिद्रता से इन्द्रदेव की करुणा जाग्रत हो उठी थी। यह शैला वार्टली साहब की बहन

जेन की पुत्री थी। जेन नील-कोठी में माई के साथ रहती थी, उसकी मृत्यु के उपरान्त इंगलैण्ड चली गई। वहीं शैला का जन्म हुआ। जेन का पति स्मिथ उसका सब रुपया उड़ा चुका था। बड़े होने पर शैला ने अपने को दरिद्रता में एकान्त पाया। माँ मर चुकी थी, पिता जेल में था। तभी इन्द्रदेव की दया उसकी सहायक बनी। भारत लौटते समय वह शैला को साथ ले आए। शैला पूर्णतया भारतीय जीवन को अपनाने लगी। उसने भाषा, वेशभूषा और रहन-सहन में भारतीयत्व ग्रहण कर लिया था। वह ग्राम-जीवन के प्रति आकृष्ट थी और ग्रामीणों से सम्पर्क स्थापित करने लगी।

शैला के आने से इन्द्रदेव के परिवार में हलचल मच गई। इन्द्रदेव की माँ श्यामदुलारी पुराने विचारों की महिला हैं; छुआ-छूत की भावना प्रबल है। विलायत से लौट कर पुत्र ने जब उनका चरण-स्पर्श किया तो उसके चले जाने पर उन्होंने स्नान आवश्यक समझा। इन्द्रदेव को यह ज्ञात हुआ। वे शैला के साथ धामपुर की छावनी में रहने लगे। शैला की उपस्थिति से श्यामदुलारी चिन्तित हैं। वह बेटे को सँभालना चाहती हैं। इसीलिए उन्होंने धामपुर की छावनी में रहना निश्चित किया। उनके साथ उनकी पुत्री माधुरी आई। उसकी अभिभाविकता में श्यामदुलारी निश्चिन्तता अनुभव करती हैं।

एक दिन इन्द्रदेव और शैला चौबेजी के साथ शिकार खेलने निकले। पथ में शैला और चौबेजी से इन्द्रदेव अलग हो गए। संध्या के झुरमुटे में चौबेजी ठोकर खाकर गिरे तो उनका उठना मुश्किल हो गया। शैला ने बंजो (तितली) की सहायता से चौबे को उठाया। तभी इन्द्रदेव उन्हें खोजते आ पहुँचे। तीनों रामनाथ की कुटिया की ओर चले। चौबे के घुटने में चोट आ गई थी। रामनाथ की आज्ञा से मधुबन ने उसकी सेंक-साँक कर दी। चौबे रात के लिए कुटिया में रह गया। शैला और इन्द्रदेव छावनी लौट गए। प्रातः काल चौबेजी को लाने के लिए पालकी भेजी गई। इन्द्रदेव और शैला भी उसे रामनाथ की कुटिया में देखने के लिए

गए। लौटते समय साथ में तितली और रामनाथ को भी ले लिया।

इन्द्रदेव की माँ श्यामदुलारी प्रायः रुग्ण रहतीं। उनकी देख-भाल का दायित्व अनवरी नामक एक लेडी-डाक्टर पर था। वह छिछोरी प्रकृति की उच्छृंखल युवती थी। अनवरी इन्द्रदेव पर डोरे डालने लगी। पर शैला की उपस्थिति उसे खल रही थी। वह उसे अपने मार्ग का व्यवधान समझती थी। उसने माधुरी को, शैला के हटाने के षडयंत्र में, सम्मिलित किया। माधुरी पति-उपेक्षिता थी। अनवरी ने उसके मन में सम्पत्ति के प्रति आकांक्षा जगा कर अपने पक्ष में कर लिया। साथ ही यह संकेत भी किया कि यदि इन्द्रदेव शैला से विवाह कर लेते हैं तो श्यामदुलारी अपनी सम्पत्ति का वारिस माधुरी को बना देंगी। माधुरी अनवरी की चाल में फँस कर अपने भाई का विरोध करने लगी।

पर शैला ने श्यामदुलारी को अपने नम्र-मधुर व्यवहार से मोह लिया। श्यामदुलारी पुत्र को शैला के ग्राम-सुधार कार्य में रुचि रखते देख प्रसन्न हुईं। उनका हृदय बेटे को काम की बातों में लगा देख मिठास से भरने लगा। माँ पुत्र की ओर होने लगी। शैला व्यवधान थी, वही खाई में पुल बनाने लगी। इन्द्रदेव मन ही मन संतुष्ट हो रहे थे कि शैला ने माँ के समीप पहुँचने का अपना पथ बना लिया है। उन्हें माधुरी-अनवरी की भीतरी कुमंत्रणा नहीं ज्ञात थी। माधुरी के मन में अनवरी द्वारा जो आग लगाई गई थी, वह उसके हृदय-प्रदेश को जलाने लगी। उसके मन में लोभ तो जाग ही उठा था, अधिकारच्युत होने की आशंका ने उसे और भी संदिग्ध और प्रयत्नशील बना दिया। इसकी दृढ़ संभावना थी कि उसके गौरव की चाँदनी शैला की ऊषा में फीकी पड़ेगी ही। अतएव वह युद्ध के लिए तत्पर थी। अनवरी को वह अपने पक्ष में समझती थी, चौबे भी उसकी ओर आ मिला। इस प्रकार एक सम्मिलित कुटुम्ब में राजनीति ने अधिकार जमा लिया। स्वपक्ष और परपक्ष का सृजन होने लगा। अनवरी वैमनस्य की अग्नि प्रज्वलित करने में तत्पर थी।

वार्टली की नील वाली कोठी के प्रति शैला के हृदय में ममत्व था

क्योंकि उसकी माँ जेन ने अपने जीवन के सुखी दिन वहीं व्यतीत किए थे। गाँव के महँगू महतो ने शैला को उसकी माँ के विषय में अनेक बाते बताईं। महँगू पर जेन के अनेक अहसान थे। इसीलिए वह जेन के प्रति श्रद्धालु था। शैला ने नील वाली कोठी देखना चाहा। नील वाली कोठी टूट-फूट कर भुतही कोठी के नाम से प्रसिद्ध थी। कोई भी उस ओर नहीं जाता था। किन्तु साहसी मधुबन और रामजस शैला के साथ जाने को प्रस्तुत थे। उनके साथ वह कोठी देखने चल दी। एक ऊँचा टीला रहस्य स्तूप की भाँति नीली-कोठी का परिचय दे रहा था। उसकी टूटी सीढ़ियों पर चढ़ वे दालान में पहुंचे। झील के किनारे पत्थरों की एक पुरानी चौकी पर बैठ शैला अतीत के स्मृति-चित्र देखने लगी जब उसकी स्नेहमयी जननी यहाँ रहती थी। जिस दिन से उसे वार्टली और जेन का सम्बन्ध इस भूमि से विदित हुआ, उस दिन से उसकी मानस-लहरियों में हलचल हुई। पहले उसके हृदय ने तर्क-वितर्क किया। पर बाल्यकाल की सुनी बातों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी माता जेन ने अपने जीवन के सुखद दिवस यहीं व्यतीत किए थे। जब प्रमाणों ने सन्देह निर्मूल कर दिया, तब स्मृतियाँ नेत्रों को आर्द्र करने लगीं। रात व्यतीत होने को थी, तब वह लौटी।

धामपुर का तहसीलदार पहले शेरकोट में मधुबन के पिता के यहाँ नौकर था। गुदाम वाले साहब से उसकी साजिश पर ही मधुबन के पिता लड़ बैठे। वर्षों के मुकदमे में जब शेरकोट तबाह हो गया, तब वह धामपुर की छावनी में नौकरी करने लगा। उसकी दुष्ट प्रकृति उसे शांति नहीं लेने देती थी। उसने शेरकोट और बंजरिया को लेकर झंझट खड़ा कर दिया। वह चाहता था कि रामनाथ की बंजरिया बेदखल हो जाय और शेरकोट में बैंक खुले। रामनाथ ने इन्द्रदेव को बंजरिया का इतिहास बताया जिससे वह इष्टार्पण माफी प्रमाणित हुई। पर तहसीलदार ने शेरकोट सम्बन्धी कागजों पर श्यामदुलारी के हस्ताक्षर करा लिये क्योंकि मधुबन के पिता की जमींदारी नीलाम में उन्हीं के नाम से क्रय की गई थी।

वह हिस्सा अभी तक खेवट में उनके ही नाम था।

व्यतीत होते दिनों में एक दिन इन्द्रदेव ने ऐसा अनुभव किया कि वह जो कुछ पहले थे, अब नहीं रहे। शैला बार-बार उनकी चिन्ताधारा में आ उपस्थित होती। इन्द्रदेव अभी यह सोच नहीं सके थे कि उसकी स्थिति क्या होगी। वह शैला के संसर्ग से मुक्त होने की चेष्टा करने लगे—विरक्ति के कारण नहीं; उसका गौरव बढ़ाने के लिए। उनके कुटुम्ब वाले शैला को कुलीनवत् सम्मान नहीं दे रहे थे—यह प्रच्छन्न व्यंग्य उन्हें व्यथित कर देता था। शैला भी इस परिस्थिति से परिचित थी। पर वह इन्द्रदेव से पृथक होने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। शैला और इन्द्रदेव को लेकर धामपुर में फैले प्रवाद से इन्द्रदेव की बड़ी ग्लानि हुई। पर शैला दृढ़ थी—प्रवाद की निर्मूलता सिद्ध करने के लिए वह बैंक और औषधालय चलाकर अपनी स्वतंत्र स्थिति चाहती थी। श्यामदुलारी, इन्द्रदेव और मैजिस्ट्रेट आदि शेरकोट को नवीन योजनाओं का केन्द्र बनाना चाहते थे। पर शैला का ममत्व नील वाली कोठी पर है। वह इन योजनाओं को अपनी माँ के निवास स्थान में चलाना चाहती है। उसने इन्द्रदेव को नील वाली कोठी से अपनी माँ का सम्बन्ध बताया। उसकी यह इच्छा भी थी कि दरिद्र मधुबन को उसके खँडहरों से निष्कृत न किया जाय।

तितली की आयु विवाहोपयुक्त थी। रामनाथ ने मधुबन की बहन राजो से विवाह का प्रस्ताव किया। राजकुमारी को कदाचित् आपत्ति न होती यदि सुखदेव चौबे बीच में न पड़ता। चौबे पहले राजो के ससुराल का पुरोहित था। विधवा राजो के निराश जीवन में चौबे की सहानुभूति स्निग्धता घोलती थी। यहाँ तक कि राजो के साथ चौबे का नाम जोड़ा जाने लगा। पर बात आगे न बढ़ पाई। मधुबन को सम्हालने के लिए राजो शेरकोट आ गई। चौबे धामपुर की छावनी में नौकर हो गया। अनेक दिनों बाद जब चौबे राजकुमारी से मिला तो राजो का अतृप्त हृदय सरस अनुभूतियों से परिव्याप्त हो गया। प्रौढ़ राजो के चञ्चल हृदय

धारण करने लगा। इन दिनों एक घटना और हो गई जिसने इन्द्रदेव का वहाँ रुकना असह्य कर दिया। माधुरी का आवरा पति श्यामलाल छावनी में आया था। उसने अनवरी के संकेत पर शैला से अशिष्ट व्यवहार ही नहीं किया, छेड़-छाड़ भी की। इन्द्रदेव को शैला के अपमान पर बड़ा क्रोध आया किन्तु विषम पारिवारिक स्थिति में चुप रहना पड़ा। इसी समय उन्होंने शैला से विवाह का प्रस्ताव किया। शैला को वह अस्वीकृत न था, पर उसके पास वाट्सन का एक पत्र आया था, जिसमें उसके स्नेह का आभास मिलता था। इसलिए शैला ने कुछ समय की याचना की। इन्द्रदेव वाट्सन के नाम से द्वेषपूर्ण सन्देह करने लगे। शैला के आश्वस्त करने पर भी जैसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ। श्यामलाल द्वारा घर की नौकरानी के प्रति किए गए दुर्व्यवहार से उन्हें इतना क्रोध आया कि वे उसे दण्ड देने को प्रस्तुत हुए। उनकी इच्छा हुई कि श्यामलाल को उसकी अशिष्टता का, ससुराल में यथेष्ट अधिकार भोगने का फल दो घूँसे लगा कर दे दें। किन्तु माँ और माधुरी? उन्हें खून का घूँट पीना पड़ा। पर इस वातावरण में रहना असह्य हो गया था। वे काशी चले गए। किराये का मकान लेकर बैरिस्ट्री प्रारम्भ कर दी।

इधर अनवरी और श्यामलाल में गँठ चुकी थी। श्यामलाल अनवरी को लेकर कलकत्ते भाग गया। पति के इस कृत्य ने माधुरी के मुँह पर कालिमा पोत दी। श्यामलाल की हृदयहीनता से उसका दिल टूट गया। इस विपत्ति में शैला ने उसके प्रति सच्ची समवेदना प्रकट की। माधुरी के हृदय में शैला के प्रति मालिन्य नष्ट होने लगा। इस घटना से शैला को प्रताड़ित करने वाली माधुरी, अनवरी और चौबे की दुरभिसंधि भी नष्ट हो गई। इस दुर्घटना के उपरान्त श्यामदुलारी ने छावनी छोड़ कर नगर की कोठी में जाना निश्चित किया। बेटी के अन्धकारमय भविष्य की सूचना उन्हें मिल चुकी थी, अतएव वे अपने नाम की भूमि-सम्पत्ति माधुरी को देना चाहती थीं। शैला भी उनसे एकमत थी। बनारस जाकर दान-पत्र की रजिस्ट्री कराना तय हुआ। शैला को पता चल गया था कि

इन्द्रदेव काशी में प्रैक्टिस करते हैं। वह भी साथ हो ली। उसने इन्द्रदेव को मनाने का निश्चय किया। नगर आकर श्यामदुलारी ने अपनी जायदाद माधुरी के नाम कर दी। इन्द्रदेव पारिवारिक झगड़ों की जड़, सम्पत्ति के प्रति विरक्त थे। उन्होंने अपने नाम की जायदाद श्यामदुलारी को देने की इच्छा प्रकट की। नगर में उनका और शैला का विवाह हो गया।

धामपुर में जमींदार की छावनी सूनी होते ही सन्नाटा छा गया। तितली और मधुबन का विवाह कराके बाबा रामनाथ चले गए थे। शैला से रिक्त नील-कोठी भी शून्य थी। शेरकोट में राजकुमारी के दुर्बल-चञ्चल मन को चौबे उकसाया करता था। जब राजो ने मधुबन और तितली के विवाह में बाधा डाली थी, तभी से मधुबन ने शेरकोट में रहना छोड़ दिया था। वह नील-कोठी में रहता या बजरिया में। उसे राजकुमारी के चरित्र पर सन्देह हो चला था। राजो के मन को वासनाओं के पुनरुद्दीपन ने मलिन कर रखा था। एक दिन मधुबन ने चौबे को रंगे हाथों पकड़ लिया। उसने चौबे की खूब मरम्मत की। इस घटना से राजो के फिसलते पैर रुक गए और भाई से समझौता हो गया।

श्यामदुलारी के नगर चले जाने से धामपुर में तहसीलदार का एकाधिपत्य हो गया। कई गाँवों में पाला ने खेती चौपट कर दी थी, पर तहसीलदार की क्रूरता बढ़ती ही गई। उसने रामजस की खड़ी फसल कुर्क करा ली। सुखदेव चौबे तहसीलदार का साथी बन गया। एक दिन उसकी रामजस से कहा-सुनी हो गई। रामजस ने उस पर लाठी छोड़ दी। सुखदेव गिर पड़ा। गाँव में हल्ला मच गया और अन्य व्यक्तियों के साथ मधुबन भी घटनास्थल पर दौड़ आया। वह रामजस को शांत कर ही रहा था कि तहसीलदार छावनी से दस लठैत ले आ धमका। 'मार मार' की ललकार बढ़ चली। मधुबन ने देखा कि रामजस मारा जाता है। उसने हाथ उठाकर कहा—'भाइयो ठहरो, बिना समझे मार-पीट करना नहीं चाहिये।' 'यही पाजी तो सब बदमाशी की जड़ है।'—कहकर तहसीलदार ने ललकारा। दनादन लाठियाँ छूट पड़ीं। दो तीन तक तो मधुबन

बचाता रहा, पर कब तक ! चोट लगते ही उसे क्रोध आ गया। उसने लपककर एक लाठी छीन ली और रामजस के बगल में आकर खड़ा हो गया। इधर दो, उधर दस। जमकर लाठी चली। मधुबन और रामजस जब घिर जाते तो लाठी टेक कर दस-दस हाथ दूर जाकर खड़े हो जाते। छः आदमी गिरे और रामजस भी लहू से तर हो गया। तब गाँव वालों ने बीच-बचाव किया। लड़ाई बन्द हुई। मधुबन घायल रामजस को बंजरिया ले गया।

इस घटना का समाचार पुलिस को मिला। पुलिस ने छावनी के नौकरों के बयान पर ही मुकदमा चला दिया क्योंकि घायल चौबेजी इतने डर गये थे कि उनका कचहरी जाना संभव नहीं था। उधर तहसीलदार ने शेरकोट और बंजरिया पर बेदखली का दावा करना निश्चित किया। मुकदमे की पैरवी के लिए रुपयों की आवश्यकता थी। बाध्य होकर मधुबन ने राजो को शेरकोट या बंजरिया बन्धक रख कर रुपया लाने के लिए बिहारीजी के महन्त के पास भेजा। मन्दिर का महन्त छटा गुण्डा था। राजो को एकान्त में पाकर उसने पाशविक आक्रमण कर दिया। मधुबन मन्दिर के बाहर था। राजो का चीत्कार सुन दीवार फाँद कर वह महन्त की खोपड़ी पर यमदूत-सा आ पहुँचा। महन्त का विलास-जर्जर शरीर मधुबन के शक्तिशाली हाथों में निश्चेष्ट होकर ढीला पड़ गया। उसकी निर्जीव देह अपने हाथों से छोड़ते हुए मधुबन जैसे सचेत हो उठा। चेतना ने काण्ड की भयानकता का परिचय कराया। हत्या के भय से मधुबन घबड़ा गया। राजो को एक किसान के साथ घर भेज वह भग खड़ा हुआ। रात्रि में उसने मैना नामक वेश्या के घर आश्रय लिया जिसे उसने एक बार हाथी के पैर के नीचे से बचाया था। प्रातःकाल मैना की सम्मति से वह कलकत्ते चल दिया।

मधुबन के पलायन से तितली असहाय हो गई। विपत्ति पर विपत्ति। शेरकोट बेदखल हो गया और बंजरिया पर डिग्री हो गई। उसको विपत्ति में कोई सहायक न हो सका। उसकी स्वाभिमानी प्रकृति याचना

का आँचल नहीं पसारने देती थी। उसने स्वावलम्बन का कर्मपथ अपनाया। आभूषण बेचकर उसने बंजरिया का लगान चुकाया। शेरकोट बेदखल हो चुका था, इसलिए राजो के लिए बंजरिया के अतिरिक्त दूसरा आश्रय न था। वह भी तितली के साथ रहने लगी। स्वावलम्बन के महान् उद्योग-बंजरिया में तितली के स्वाभिमान का प्रदीप जल उठा।

कलकत्ते पहुँचने पर मधुबन की विवशता ने उसे आवारों और अपराधियों के दल में सम्मिलित करा दिया। दल के नायक ने मधुबन के लिए एक रिक्शा ले दिया। एक रात्रि मदिरामत्त एक स्त्री और पुरुष उसके रिक्शे में बैठे। कहा-सुनी हो जाने पर मधुबन ने पुरुष को पीट दिया। पुरुष श्यामलाल था, स्त्री वेश्या मैना। मैना के चिल्लाने पर पुलिस आ गई। मधुबन बन्दी हुआ। जिस मैना को मधुबन ने हाथी के पैर से बचाया था, उसी कृतघ्ना की गवाही पर बिहारीजी के महन्त की हत्या करने की चेष्टा के अपराध में मधुबन को दस वर्ष के सपरिश्रम कारावास का दण्ड मिला।

वाट्सन चकबन्दी के सम्बन्ध में पुनः धामपुर आया। शैला और इन्द्रदेव भी वहीं आ गए थे। नील कोठी में पुनः भीड़ होने लगी। वाट्सन के आ जाने से शैला के मन में अस्थिरता सी आ जाती थी किन्तु वाट्सन का मनुष्यत्व प्रशान्त और निर्विकार था। उसने शैला को इन्द्रदेव के अनुकूल रहने की सम्मति दी। शैला को मनःस्थैर्य प्राप्त होता है। श्यामदुलारी ने मृत्यु-शैय्या पर शैला को बहू स्वीकार कर पारिवारिक मालिन्य को धो डाला। माधुरी के हृदय में भी शैला के प्रति सद्भाव उत्पन्न हुआ। इन्हीं दिनों शैला का पिता स्मिथ जेल से छूट कर नील वाली कोठी में आ गया था। उसने अपने अन्तिम दिन पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त में व्यतीत करने के निमित्त नील-कोठी का सेवा-कार्य सँभाला। पाठशाला, बैंक और चिकित्सालय द्वारा ग्रामीण-जीवन में सुधार-कार्य अग्रसर किया गया। धामपुर का ग्राम-संगठन भलीभाँति हो गया और अन्य गाँवों की तुलना में वह स्वर्ग बन गया।

जेल से छूटने पर मधुवन की भेंट एक पुराने परिचित व्यक्ति से हुई। उसके साथ वह हरिहर क्षेत्र के मेले में गया। वहाँ महन्त, तहसीलदार, चौबे और मैना—सब एकत्र थे। मधुवन ने छिप कर उनकी बात सुनी। उनकी वार्ता से मधुवन को अपने घर का समाचार मिला। वह घर जाने के लिए व्यग्र हो उठा। जाने के कुछ क्षण पूर्व उसे ज्ञात हुआ कि रात्रि में हाथी के बिगड़ जाने से तहसीलदार, चौबे और मैना की मृत्यु हो गई है। महन्त के बचने की आशा भी नहीं है।

उधर तितली की साधना से बञ्जरिया जगमगा उठी थी। स्वावलम्बन के कर्मपथ पर चल कर न केवल उसने अपना निर्वाह किया था अपितु निराश्रित प्राणियों के निर्वाह का प्रबन्ध भी किया। पर उसकी साधना का वरदान—मधुवन अभी नहीं लौटा था। उसे विश्वास था कि वह आयेगा। इसी सम्बल से उसने संसार का सामना किया था—दुराशा की विकट घड़ियाँ साहस से काटी थीं। उसने अविचल कर्त्तव्यनिष्ठा और स्वावलम्बन पर खड़े होकर घर सँभाला था। उसके स्नेह का आधार पुत्र मोहन बड़ा हो चला था। वह अपने पिता के विषय में जानना चाहता था। तितली को विश्वास था कि मधुवन एक दिन अवश्य लौट आयेगा। दिन बीत चले। विश्वास का बाँध निराशा के प्रहार से टूटने लगा। उधर सन्देहशील दंभी समाज का छिपा तिरस्कार और अलक्षित बहिष्कार उसके हृदय को मथ रहा था। निराश जीवन कटु वास्तविकता के प्रहार से जर्जर हो उठा। एक रात्रि जीवन की मन्द शिखा को गंगा की गोद में बुझाने का निश्चय कर उसने द्वार खोला। पर वह आगे न बढ़ सकी। उसने देखी एक चिरपरिचित मूर्ति। जीवन-युद्ध का थका सैनिक मधुवन विश्राम शिविर के द्वार पर खड़ा था।

वस्तु

'कंकाल' की भाँति ही तितली की कथावस्तु चार भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में कथा-सूत्रों का परिचय प्राप्त होता है—वस्तुगत समस्याओं की रूपरेखा अंकित होने लगती है। द्वितीय भाग में द्वन्द्व-

विधान द्वारा कथानक का विकास किया गया है। यह द्वन्द्व इन्द्रदेव तथा रामनाथ से विशेष सम्बन्धित है। इन्द्रदेव के पक्ष में अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है; रामनाथ के पक्ष में बहिर्द्वन्द्व। इन्द्रदेव की पारिवारिक समस्याएँ जटिल होने लगती हैं। उधर रामनाथ सबका विरोध सहकर तितली और मधुबन का विवाह सम्पन्न कराता है। पारिवारिक विरोध जहाँ इन्द्रदेव के क्षोभ को अन्तर्मुखी कर देता है, वहीं सामाजिक विरोध रामनाथ को खुले मैदान में जूझने के लिए बाध्य करता है। द्वितीय भाग में वस्तु-विकास के ये दो महत्वपूर्ण उपादान हैं। तृतीय खण्ड में जमींदार के उद्दण्ड कर्मचारियों और ग्रामीण व्यक्तियों के पारस्परिक संघर्ष से कथागत द्वन्द्व का प्रभाव बढ़ जाता है। लाठियाँ चलती हैं, सिर फूटते हैं। मधुबन फरार हो जाता है। कथानक का यह मोड़ वस्तुगत द्वन्द्व से अत्यधिक प्रभावित है। इसी-लिए यह कथा के स्वाभाविक विकास की योजना करता है। उधर शैला-इन्द्रदेव के परिणय द्वारा शैला की अनिश्चित अवस्था के प्रति पाठक की उत्सुकता का शमन होता है। इसी खण्ड में वस्तु चरम-सीमा को छूने लगती है। चतुर्थ खण्ड में नियति और शमन है। मधुबन का कलकत्ता प्रवास, जेल-जीवन, इन्द्रदेव की कौटुम्बिक अशान्ति का अन्त, तितली की साधना, मधुबन का प्रत्यावर्तन, इसी खण्ड के महत्वपूर्ण अंग हैं। यहीं उपन्यास की कथा का सुखान्त होता है। इन्द्रदेव-शैला एवं तितली-मधुबन का मिलन, संघर्ष की समाप्ति पर आनन्दोद्रेक का कारण है। इस प्रकार 'तितली' में वस्तु-निर्माण की भारतीय परम्परा का प्रभाव लक्षित होता है। इस दृष्टि से 'तितली' 'कंकाल' से भिन्न है। 'कंकाल' में मनुष्य के उत्पीड़न की विषादान्त कथा है; 'तितली' संघर्षमय जीवन के सुखान्त की साक्षी है।

'तितली' में दो कथाएँ साथ साथ चलती हैं। एक का सम्बन्ध इन्द्रदेव, शैला, श्यामदुलारी, माधुरी इत्यादि पात्रों से है, दूसरी का सम्बन्ध रामनाथ, मधुबन, तितली, राजो आदि से। दोनों कथाओं को अनुस्यूत करने वाले पात्र हैं—इन्द्रदेव, शैला और सुखदेव चौबे। कथा-सूत्र परस्पर

भलीभाँति सम्बद्ध हो जाते हैं। सामान्यतया पृथक्त्व की प्रतीति नहीं होती। इन दो कथाओं के अतिरिक्त कुछ प्रासंगिक कथाएँ भी हैं। रामदीन-मलिया, अनवरी-श्यामलाल और मुकन्दलाल-नन्दरानी की प्रासंगिक गौण कथाएँ उपन्यास में प्राप्य हैं। प्रथम दो गौण कथाएँ वस्तु में घुल-मिल गई हैं किन्तु नन्दरानी-मुकुन्दलाल की कथा पृथक सी रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार के लक्ष्य में सहायक यह प्रासंगिक-कथा जैसे अपने में पूर्ण हो। शैला और इन्द्रदेव के जीवन-सम्बन्ध की अनिश्चितता को दूर करने में नन्दरानी का मुख्य हाथ है—इस दृष्टि से ही हम इस कथा को कथानक में सम्बद्ध देख पाते हैं अन्यथा इसका पार्थक्य स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

इस उपन्यास का कथा-विकास स्वाभाविक ढँग पर चलता है जिसमें परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत है। दोमुखी द्वन्द्वविधान द्वारा परिस्थितियों की योजना की गई है। यद्यपि अन्तर्द्वन्द्व की अपेक्षा बहिर्द्वन्द्व प्रधान हैं, तथापि द्वन्द्वपरिचालित परिस्थितियों से कलात्मक कथा-विकास की परिपाटी का निर्वाह हुआ है। विशेष रूप से मधुबन के कलकत्ता-प्रवास के निमित्त जिन परिस्थितियों की सृष्टि की गई है, वे 'तितली' के कलात्मक कथा-विकास का प्रमाण हैं। कलकत्ते में भी मधुबन की कथा परिस्थितियों से प्रगति प्राप्त करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'कंकाल' की कृत्रिम कथावस्तु विकास-पद्धति की अपेक्षा 'तितली' की कथा-विकास योजना स्वाभाविक, प्रौढ़ और परिपूर्ण है।

'तितली' की कथावस्तु 'कंकाल' की अपेक्षा सहज-सुलझी है। इसमें 'कंकाल' के वस्तु-संगठन की अनेक कथाओं के गुम्फन से उत्पन्न जटिलता नहीं है। 'कंकाल' की वस्तु अनेक छोटी-बड़ी कहानियों के कारण बोझिल और शिथिल है। 'तितली' के कथा-संगठन में यह दोष नहीं है। इस उपन्यास में न अधिक प्रसंग-कथाएँ हैं और न घटना-बाहुल्य। वस्तु का विकास 'कंकाल' की भाँति झटके खाता नहीं चलता। उसकी प्रगति समतल है जबकि 'कंकाल' की कथा-वस्तु अनेक केन्द्रों में झटके खाती फिरती

है। उसका कथानक अनेक नगरों और तीर्थस्थानों में केन्द्रित है। मन्तव्य-प्रतिष्ठा के लिए उपन्यासकार सब केन्द्रों में वस्तु को घुमाता फिरता है जिससे कथा-विकास की कृत्रिमता स्पष्ट हो जाती है। 'तितली' का कथानक धामपुर, शेरकोट, बञ्जरिया, काशी और कलकत्ते में विकास प्राप्त करता है। काशी एवं कलकत्ते में कथा-सूत्र कम दिखाए गए हैं। शेरकोट, बञ्जरिया और धामपुर की छावनी परस्पर इतने निकट हैं कि उनका पार्थक्य अनुभव नहीं होता। वस्तुतः ज्ञात यह होता है कि ग्रामीण वातावरण में वस्तु विकास प्राप्त कर रही है। मुख्य घटनाएँ ग्रामीण जीवन-चित्रण में दृष्टिगत होती हैं। उपन्यासगत सामान्य जीवन-चित्रण कथा-वस्तु को भी प्रभावित करता है। इसीलिए कथा-वस्तु की सहज-सामान्य गतिशीलता 'तितली' की विशेषता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि वस्तु-निर्माण-कला में प्रसाद 'तितली' में 'कंकाल' से अधिक सफल हैं। कथा-वस्तु की अनेक ग्रन्थियाँ उन्होंने कथोपकथन द्वारा सुलझा कर कलात्मक निर्मात्री-प्रतिभा की अमिट छाप लगा दी है। अनवरी-श्यामलाल के पलायन-काण्ड का कथोपकथन की सहायता से जिस कौशल द्वारा प्रसाद परिचय देते हैं, वह द्रष्टव्य है। यह प्रसाद की उपन्यास-कला के सतत् विकास का सूचक भी है। कथा-विकास में कथोपकथन का प्रयोग अथवा कथोपकथन द्वारा कथा-विकास उच्चकोटि की कला का परिचायक है।

पात्र

'तितली' की पात्र-सृष्टि 'कंकाल' की अपेक्षा कलात्मक है। इसमें घटनाएँ उपेक्षाकृत कम और संतुलित हैं। इसीलिए उपन्यासकार को चरित्र-विकास अंकित करने का अवसर मिला है। 'तितली' की पात्र-योजना 'कंकाल' की यांत्रिक पात्र-योजना नहीं है। पात्रों के चरित्र-विकास में परिस्थितियों का प्रभाव अंकित करके उपन्यासकार ने चरित्र-चित्रण कला की रक्षा की है। विशेष रूप से मधुवन के चरित्र-चित्रण में परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दिखाया गया है। पर उपन्यास लेखक इस कौशल का समुचित उपयोग नहीं कर सका जिससे इन्द्रदेव ऐसे मुख्य

पात्र प्रभावविशिष्ट नहीं हो सके।

'तितली' की पात्रसृष्टि में योजना है। इसमें दो प्रकार के पात्र आए हैं। सद्वृत्ति वाले पात्र और असद्वृत्ति वाले, खल पात्र। मोटे रूप से भले और बुरे पात्रों के दो समूह उपन्यास में दृष्टिगत होते हैं। खल पात्रों में तहसीलदार, सुखदेव चौबे, श्यामलाल, अनवरी आदि हैं। स्पष्ट है कि उपन्यासकार इन्हें खल व्यक्तियों के रूप में ही चित्रित करता है और पाठक की घृणा इनके विरुद्ध जागृत करता है। सद्वृत्तिप्रधान पात्रों में इन्द्रदेव, शैला, श्यामदुलारी, तितली मधुबन, रामनाथ आदि हैं। उपन्यासकार इन्हें भले मनुष्यों के रूप में देखता है। माधुरी को खल पात्र नहीं माना जा सकता। उसकी षडयन्त्रप्रियता अनवरी के प्रभाव और परिस्थितियों की बाध्यता के कारण थी। दोनों से मुक्त होने पर वह स्वाभाविक मानसिक-स्तर पर आ जाती है। कथाकार व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण कम करता है। वह विरुद्ध मनोवृत्ति वाले पात्रों के संघर्ष द्वारा द्वन्द्व-योजना करता है। अन्तर्द्वन्द्वप्रधान पात्र-सृष्टि सजीव चरित्रों की अवतारणा करती है। नाटकों के अतिरिक्त उपन्यासों में भी इसका महत्व-पूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से 'तितली' की चरित्र-चित्रण प्रणाली प्राचीन ढँग की है क्योंकि उसका अन्तर्द्वन्द्वविधान अपर्याप्त है।

पात्रों को दो विभागों में बाँट कर कथाकार काव्य-न्याय (Poetic Justice) की प्रतिष्ठा भी करता है। दुर्वृत्तिप्रधान पात्र पराजित होते हैं, सद्वृत्ति वाले पात्र विजय प्राप्त करते हैं। महन्त, तहसीलदार, सुखदेव चौबे आदि खल पात्र असमय मृत्यु के अन्धकार में समा जाते हैं। इसके विपरीत तितली, शैला आदि सद्वृत्तिसम्पन्न पात्रों की विजय अंकित की गई है। जीवन-संग्राम में प्रसाद सद्वृत्तियों की जीत अंकित करके प्राचीन आदर्शवादी परम्परा का अनुमोदन करते हैं। इस दृष्टि से 'कंकाल' का स्वर 'तितली' के आदर्शनिष्ठ मत से सर्वथा भिन्न है। इसमें प्रसाद पात्रसृष्टि के प्रेमचन्दीय काव्य-न्याय के निकट दृष्टिगत होते हैं। इसीलिए 'तितली' की आदर्शवादिता प्रेमचन्द-साहित्य की आदर्शवादिता

से मेल खाती है।

'तितली' के विशिष्ट पात्रों की चरित्र-व्याख्या निम्नांकित है—

धामपुर के युवक जमींदार इन्द्रदेव विलायत से बैरिस्टर होकर देश लौटे हैं। विदेश में दरिद्रता के अकूल प्रवाह में बहती शैला से उनका परिचय हुआ था। भारत लौटते समय वे शैला को साथ ले आए जिससे परिवार का मतैक्य नष्ट हो गया। रूढ़िवादी श्यामदुलारी अपने पुत्र को विधर्मी स्त्री के साथ बिगड़ा समझने लगीं। कौटुम्बिक मालिन्य के कारण शैला के विषय में प्रचरित प्रवादों से इन्द्रदेव को आंतरिक दुःख था। समाज का प्रच्छन्न व्यंग्य उनकी मनोव्यथा तीव्र करता, किन्तु वे विवश थे। शैला का गौरव बढ़ाने और प्रवादों का अन्त करने के लिए उन्होंने शैला की स्वतन्त्र स्थिति दृढ़ करने में योग दिया। अपने को शैला के संसर्ग से मुक्त करने में उन्हें दुःख हुआ। मिथ्या आक्षेपों से व्यथित होकर उन्होंने शैला से कहा था—'मैं अब इसलिए चिन्तित हूँ कि अपना और तुम्हारा सम्बन्ध स्पष्ट कर दूं। यह ओछा अपवाद अधिक सहन नहीं किया जा सकता।' पारिवारिक झगड़ों ने उनकी मनोव्यथा को और भी बढ़ा दिया था। अपने ही परिवार में 'साम्राज्य की सी नीति बरतने में उन्हें बड़ी पीड़ा होती थी।' परिवार में स्वपक्ष और परपक्ष निर्मित हो चुके थे, अतएव जटिल कौटुम्बिक-जीवन में संभल कर चलना आवश्यक था। जिसे 'घर' कहते हैं—निश्छल पारिवारिक जीवन—वह दुष्प्राप्य था। इन्द्रदेव विलायत से सुधार के स्वप्न देखते आए थे। घर के बोझिल और असह्य वातावरण में कुण्ठित हो उन्हें अनुभव हुआ—'मैं अपने वातावरण में घिरा हुआ बेबस हो रहा हूं।' परवशता और विवशता ने उन्हें उदासीन बना दिया। दृढ़ता से कर्मपथ पर चलने का उत्साह क्षीण पड़ गया। उदासीनता के कारण उन्होंने अपनी सम्पत्ति त्याग दी। पारिवारिक झगड़ों का अन्त करना भी इस त्याग का लक्ष्य था। यह त्याग सुधार भावना से नहीं किया गया था। अतएव जिन आलोचकों ने इन्द्रदेव को सुधार के निमित्त त्यागप्रिय व्यक्ति घोषित किया है वे भूल जाते हैं कि

स्वयं इन्द्रदेव ने शैला से कहा था—'नियमपूर्वक लिखा-पढ़ी करके मैं समस्त अधिकार और अपनी सम्पत्ति माँ को दे देना चाहता हूं। मेरे परम आदर की वस्तु माँ का स्नेह जिसे पाकर खोया जा सके, वह सम्पत्ति मुझे न चाहिए।' तितली ने भी इन्द्रदेव की आलोचना करते हुए कहा था - 'हाँ, आप जमींदार नहीं हैं तो क्या, आपने त्याग किया होगा। किन्तु उससे किसानों को तो लाभ नहीं हुआ।' इन्द्रदेव को सुधारों में विश्वास था किन्तु इनके लिए वे दृढ़ता से कर्मपथ पर बढ़ते नहीं दृष्टिगत होते। पारिवारिक जीवन की जटिलता उनकी सुधार-सक्रियता में बाधक हो उठी। परिस्थितियों से ऊपर उठने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी जो जीवन के कर्मक्षेत्र में, विरोधों का प्रत्याख्यान कर, अपना पथ प्रशस्त कर लेती है। अतएव जो आलोचक उन्हें सुधारक कहते हैं और 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर से तुलना करते हैं, वे दोनों चरित्रों को भलीभाँति समझ नहीं पाए हैं। इन्द्रदेव सुधार में विश्वास करते हैं, किन्तु स्वयं क्रियान्वित नहीं कर पाते। शैला, तितली और स्मिथ यह कार्य करते हैं। 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर अपने विश्वास को कार्य रूप में परिणत करता है। उसमें इन्द्रदेव की सी दार्शनिक उदासीनता नहीं, कर्मण्यता है।

कर्मठता की दृष्टि से शैला का चरित्र अधिक आदर्श है। वह सुधार कार्यक्रम मे सक्रिय योग देती है। उसने अनेक बाधाओं और प्रतिकूल परिस्थितियों मे अपने कर्मपथ पर चल दृढ़ता और साहस का परिचय दिया। उसे ग्राम-जीवन प्रिय है; विदेशी रमणी होने पर भी उसने भारतीय ग्राम-जीवन को सहानुभूति से समझना चाहा। वह ग्रामीण व्यक्तियों से मिल-जुल कर उनकी समस्याओं का अध्ययन करती है। भारत आने के कुछ दिनों पश्चात् ही वह इस देश के ग्राम निवासियों में घुल-मिल जाती है। नमूने का गाँव बसाने का सारा कार्यक्रम वही सँभालती है। गाँवों के लिए उसने एक योजना भी प्रस्तुत की थी। उसने अनवरी से कहा था—'मुझे तो इनके (देहातियों) पास जीवन का सच्चा स्वरूप मिलता है जिसमें ठोस मेहनत, अटूट विश्वास और सन्तोष से भरी शान्ति हँसती-

खोलती है। लन्दन की भीड़ में दबी हुई मनुष्यता में मैं कब उठी थी, और अब मैं यहाँ जान सी यह है कि मैं दुःख भी उठा चुकी हूँ। दुःखी के साथ दुःखी की सहानुभूति होना स्वाभाविक है।' शैला के विषय में इन्द्रदेव ने नन्दरानी से कहा था—'आपने धामपुर में गाँव के किसानों की सेवा करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है।' शैला के चरित्र में उदार मनुष्यत्व पूर्ण प्रतिफलित है। धर्म सम्बन्धी उसका दृष्टिकोण क्रान्तदर्शी विवेक का परिचायक है। उसने कहा था—'प्रत्येक जाति में मनुष्य की बाल्यकाल ही में एक धर्म-संघ का सदस्य बना देने का मूर्खता-पूर्ण प्रथा चली आ रही है। जब उसमें जिज्ञासा नहीं, प्रेरणा नहीं, तब उसके धर्म ग्रहण करने का क्या तात्पर्य हो सकता है? मैं आज तक नाम के लिए ईसाई थी। किन्तु धर्म का रूप समझकर उसे मैं अब ग्रहण करूँगी। चित्रपट पहले शुभ्र होना चाहिए, नहीं तो उस पर चित्र बदरंग और भद्दा होगा।' अपने इस विश्वास के अनुरूप ही वह हिन्दू धर्म की दीक्षा लेती है। उसमें विचार-स्वातन्त्र्य के साथ स्वावलम्बन भी पर्याप्त मात्रा में है। निज सम्बन्धी, प्रवादों से इन्द्रदेव को मुक्त रखने के लिए उसने अपना निश्चय व्यक्त किया था—'मुझे काम करना पड़ेगा, और काम किए बिना यहाँ रहना मेरे लिए असंभव है। अपनी रियासत में मुझे एक नौकरी और रहने की जगह देकर मेरे बोझ से तुम इस समय के लिए छुट्टी पा जाओ, और स्वतन्त्र होकर कुछ अपने विषय में भी सोच लो।' इन्द्रदेव के प्रति उसका प्रेम उनके पारिवारिक सम्बन्धों को अस्त-व्यस्त कर चोट नहीं पहुँचाना चाहता। उसकी निष्कपट मनोवृत्ति उसके प्रति विश्वास उत्पन्न करती है। उसकी नम्रता, सरलता और मनुष्योचित उदारता से विपक्षी भी उसके प्रशंसक बन जाते हैं। श्यामदुलारी को माधुरी से स्वीकार करना पड़ा था—'हम लोग जितनी बुरी शैला को समझती थीं, उतनी तो नहीं है। बड़ी अच्छी लड़की है।' अन्त में श्यामदुलारी ने उसे पुत्र-वधू स्वीकार किया और उसके प्रति माधुरी की प्रतिकूलता समाप्त हुई। संक्षेप में, शैला के चरित्र में पाश्चात्य नारी की स्वावलम्बन-

मयी कर्मठता और भारतीय नारीत्व के सद्गुणों का विकास हुआ है।

तितली रामदास की पोषित कन्या है जिसके माता-पिता दुर्भिक्ष में मर गए थे। बाल्यकाल के साथी मधुवन से उसका स्नेह विवाह में प्रतिफलित होता है। पर जीवन के सुखदायी दिन शीघ्र ही समाप्त हो गए। मधुवन के पलायन के उपरान्त जीवन निर्वाह का प्रश्न, भविष्य के तिमिर-वर्ण में जटिल हो उठा। किन्तु वह परिस्थितियों से पराजित नहीं हुई। उसने अदम्य दृढ़ता से स्वावलम्बन का पथ अपनाया। उसे सहायता मिल सकती थी किन्तु स्वाभिमानी तितली ने हाथ पसारना नहीं सीखा था। उसने शैला से कहा था—'मुझे दूसरों के महत्व प्रदर्शन के सामने अपनी लघुता न दिखानी चाहिए। मैं भाग्य के विधान से पीसी जा रही हूं। फिर उसमें तुमको, तुम्हारे सुख से घसीट कर; क्यों अपने दुःख का दृश्य देखने के लिए बाध्य करूँ? मुझे अपनी शक्तियों पर अवलम्बन करके भयानक संसार से लड़ना अच्छा लगा। जितनी सुविधा उसने दी है, उसी की सीमा में मैं लड़ूँगी अपने अस्तित्व के लिए।' उसका स्वावलम्बन युक्त स्वाभिमान जीवन का सुख-दुख झेलने के लिए उसे प्रस्तुत करता है। अपनी विषादमय जीवन-यात्रा में वह दूसरों को भागी नहीं बनाना चाहती। अस्तित्व-रक्षा के लिए उसने बड़ी दृढ़ता और कर्मनिष्ठा का परिचय दिया। इन्द्रदेव ने उसके इस दीप्तमान रूप को लक्ष्य करके सोचा था—'तितली वास्तव में महीयसी है, गरिमामयी है।' यही नहीं, अन्य व्यक्तियों के जीवन-निर्वाह के जटिल प्रश्न को सुलझाने में उसने सहायता दी। राजो, मलिया, रामजस—सब उसकी बञ्जरिया के आश्रय में थे। व्यक्तिगत दुःख और चिन्ता से उसने सामाजिक दायित्व शिथिल नहीं किया। कन्या पाठशाला द्वारा वह विद्या दान करती थी; उसके आश्रय में समाज-अभिशप्त शिशुओं का पालन होता था। वह अनेक अवैध सन्तानों की निर्दय समाज के कठोर हाथों से रक्षा कर रही थी। उसकी उदारता और सुधारवादिता का विरोध भी किया गया किन्तु वह निर्दिष्ट पथ से विचलित नहीं हुई। उसने शैला को बताया था—'मैंने अपनी पाठशाला चलाने का

दृढ़ निश्चय किया है। कुछ लोगों ने इन लड़कियों के रख लेने पर प्रवाद फैलाया। परन्तु वे इसमें असफल रहे। मैं तो कहती हूँ कि यदि सब लड़कियाँ पढ़ना बन्द कर दें, तो मैं साल भर में ही ऐसी कितनी ही छोटी-बड़ी अनाथ लड़कियाँ एकत्र कर लूँगी, जिनसे मेरी पाठशाला और खेती-बारी बराबर चलती रहेगी। मैं इसे कन्या गुरुकुल बना दूँगी।' मनः स्थिति की इस स्थिरता को बनाए रखने के लिए उसका जीवन-दर्शन भी है। उसने शैला से कहा था—'जब संस्कार और अनुकरण की आवश्यकता समाज में मान ली गई है, तब हम परिस्थिति के अनुसार मानसिक परिवर्तन के लिए क्यों हिचकें। मेरा ऐसा विश्वास है कि प्रसन्नता से परिस्थिति को स्वीकार करके जीवन-यात्रा सरल बनाई जा सकती है।' दुर्दिनों में इसी विश्वास ने उसे सम्बल दिया था। पर कर्म और स्वावलम्बन के व्यस्त जीवन में उसने मधुबन' को विस्मृत नहीं कर दिया था। संसार यात्रा के साथी का वियोग रह-रह कर हृदय की व्यथा बढ़ाता था। तितली की अविचल प्रेमनिष्ठा समाज की प्रताड़ना से पराभूत नहीं होती। उसने कहा था—'संसार भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कहे किन्तु मैं जानती हूं कि वह ऐसे नहीं हो सकते। इसलिए मैं कभी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक एक कोना उनके लिए, उस स्नेह के लिए संतुष्ट है।' इस विश्वास का फल उसे मिलता है—मधुबन लौट आता है।

मधुबन का चरित्र परिस्थितियों से परिचालित है। अभिजात्य वंश का कुलीन युवक गिरे दिनों में रामनाथ से प्रभावित हो श्रमजीवी बन जाता है। उसके जीवन में कर्म की कठोरता के साथ स्नेह की स्निग्धता भी है। तितली से उसका स्नेह विवाह-बन्धन में परिणत होता है। उसने गृहस्थी जमा भी न पाई थी कि विपत्ति के बादल भाग्याकाश पर सघन हो उठे। परिस्थितिवश वह फौजदारी और महन्त पर संघातिक आक्रमण का अपराधी बना। कलकत्ता प्रवास में आवारों के दल में जा मिला। वहाँ श्यामलाल और मैना से भेंट होने पर जो काण्ड घटित हुआ उसने मधुबन

को जेल की सुदृढ़ प्राचीर में बन्दी कर दिया। वर्षों का जेल-जीवन व्यतीत कर वह पुनः तितली की स्नेह-छाया में लौट आया। उसके चरित्र में कुछ भी असामान्य-असाधारण नहीं है। वह जीवन-यात्रा का सामान्य पथिक है जिसे परिस्थितियाँ प्रत्येक मोड़ पर प्रभावित करती हैं।

श्यामदुलारी पुराने अभिजात-कुल की विधवा हैं जिनके 'मुख-मण्डल पर गर्व की दीप्ति, आज्ञा देने की तत्परता और छिपी हुई सरल दया भी अंकित है। वह सरकार हैं। उनके आस-पास अनावश्यक गृहस्थी के नाम पर जुटाई गई अगणित सामग्री का बिखरा रहना आवश्यक है।' विलायत से लौटने पर जब पुत्र मेम साथ लाया तो पुरानी परम्परा में पली श्यामदुलारी ने सोचा कि लड़का बिगड़ रहा है। उन्होंने पुत्र को सँभालने के निश्चय से धामपुर की छावनी में पदार्पण किया। किन्तु अनवरी की कूटनीति ने पारिवारिक-समस्या जटिल कर दी। इसी मध्य उन्हें एक आघात और लगा। उनकी पुत्री माधुरी का पति श्यामलाल अनवरी को लेकर भाग गया। विवशता और क्रोध से श्यामदुलारी का हृदय रो पड़ा। बेटी के अन्धकारमय भविष्य की निराशा को यथासाध्य कम करने के लिए उन्होंने अपनी सम्पत्ति उसे दे दी। पर चिररुग्णा श्यामदुलारी इस चोट को अधिक दिन न झेल सकीं। अन्तिम समय में शैला को पुत्र-वधू रूप में ग्रहण करके उन्होंने रूढ़िग्रस्त संस्कारों पर विजय पाई। मृत्यु ने जीवन के व्यवधानों को तोड़ दिया। पारिवारिक मालिन्य मिट गया। मृत्यु-शय्या पर ही श्यामदुलारी को अभिमानी पुत्र की स्नेह-श्रद्धा भी प्राप्त हुई।

पति उपेक्षिता माधुरी के जीवन में प्रेम नहीं, स्निग्धता नहीं। स्त्री के लिए जिस कोमल स्पर्श की आवश्यकता होती है, वह उसे पति से न मिला था। स्नेहवियुक्त हृदय अधिकारलोलुप हो उठा। अनवरी ने उसे सम्पत्ति के लोभ-जाल में डाल दिया और उधर शैला के आगमन से अधिकारच्युत होने की आशंका ने उसकी समस्त नैसर्गिक सरलता छीन ली। वह संदिग्ध हो उठी। पिता के घर का अधिकार उसके मन बहलाने का खिलौना था; उसकी रक्षा के लिए पारिवारिक-मनोमालिन्य की सूत्रधारिणी बनना स्वीकार

किया। पर अकस्मात् वज्रपात हुआ। उसका विपथगामी पति श्यामलाल अनवरी को भगा ले गया। माधुरी के लिए यह मर्मान्तिक चोट थी। वह समाज में मुँह दिखाने योग्य न रही। पर माधुरी ने इस घटना से उसके हृदय में विरोध का विष भरने वाली अनवरी का वास्तविक रूप समझ लिया और अपनी सच्ची स्थिति आँक ली। वह स्वार्थवश इन्द्रदेव और शैला का विरोध कर रही थी। परिस्थितियाँ इसकी प्रेरक थीं। श्यामलाल और अनवरी के लोकनिन्दित आचरण से परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं। उसके हृदय का विरोध समाप्त हो गया जिससे कौटुम्बिक झगड़ों का अन्त हुआ।

सामान्य पात्रों में अनवरी का चरित्र उल्लेख्य है। अनवरी चालाक, प्रगल्भ और दुश्चरित्र नारी है। निर्लज्जतामय आचरण द्वारा वह इन्द्रदेव को आकृष्ट करने में संकुचित नहीं होती। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह इन्द्रदेव के परिवार में विरोध की अग्नि सुलगा देती है। षड्यन्त्र रचने में सिद्ध अनवरी नारीत्व का कलंक-चिन्ह है। उसमें एक भी सद्वृत्ति नहीं बची है। शालीनता को अतिक्रमण करने वाला उसका चरित्र श्यामलाल के सम्पर्क में पूरा खुल पाता है। वह दुर्व्यसनी श्यामलाल के साथ कलकत्ते भाग जाती है। माधुरी की अन्तरंग बन कर उसने उसके साथ विश्वासघात किया। उपन्यास के खल पात्रों में उसका विशिष्ट स्थान है। श्यामलाल बिगड़ा रईस है। उसका चरित्र दुर्वृत्तियों का समूह है। शैला से अशिष्टता करता है, मलिया से दुर्व्यवहार करता है और अनवरी को भगा ले जाता है। सुखदेव चौबे भी खल पात्रों में मुख्य है। वह धूर्त और कामुक है। राजो को पथभ्रष्ट करने में उसने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। राजो की अतृप्ति उसके मानसिक पतन का मूल कारण है। यदि मधुबन बीच में न पड़ता तो चौबे द्वारा वह पूर्ण पतिता हो जाती। बाबा रामनाथ दृढ़ प्रकृति का सुधारक है। सत्पथ पर विरोधों के बावजूद भी अटल रहता है। मैना वेश्या है। झूठी गवाही देकर मधुबन को पुलिस के पंजों में जकड़ देती है। मधुबन ने एक बार मैना के प्राण बचाए थे। उसकी कृतघ्नता से वह चकित रह गया। वस्तुतः वह मधुबन के साथ विश्वासघात करती है, फिर भी न

जाने क्या समझ कर डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं—'गबन' की जोहरा और 'तितली' की मैना एक ही तत्व की बनी हैं।' डाक्टर साहब इस बात पर ध्यान नहीं देते कि जोहरा रमानाथ के उद्धार में सहायक होती है जब कि मैना मधुबन को पुलिस के पंजे में फँसा देती है—उस मधुबन को जिसने उसको हाथी के पैर से रक्षा की थी। 'जोहरा' का समर्पण और 'मैना' की कृतघ्नता एक तत्व की ओर निर्देश नहीं करते। कदाचित् डाक्टर भटनागर दोनों को वेश्या देख कर भ्रमात्मक तुलना कर बैठे हैं।

समाज

'तितली' में कथाकार प्रसाद ने दो विषयों पर विशेष ध्यान दिया है—सम्मिलित कुटुम्ब-व्यवस्था और ग्राम-सुधार। उनका समाज-चिन्तन मुख्यतः इन विषयों पर दृष्टिपात करता है, वैसे कुछ अन्य विचार भी उल्लेख्य हैं। ग्राम-सुधार को आदर्शवादी दृष्टि से देखने के साथ ही कथाकार ग्राम-जीवन की दरिद्रता और अर्थ-विषमता को सांकेतिक ढङ्ग से प्रस्तुत करता है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रसाद का ग्राम-चित्रण प्रेमचन्द की भाँति मर्मिक और व्यापक नहीं है। उस जीवन का आर्थिक ढांचा भी प्रसाद नहीं दिखा सके हैं। पर प्रसाद की मनुष्यता दरिद्रता और विवशता के कुहरे में घुटते ग्रामीण से सहानुभूति रखती है। 'तितली' में धर्म के पाखण्ड का पर्दाफाश करने में भी प्रसाद पीछे नहीं हैं। उन्होंने पाखण्डी धार्मिकों के प्रतिनिधि बिहारीजी के महन्त के कुकर्मों का भण्डाफोड़ किया है। वह महन्त नहीं, गुण्डा है। बगुलाभगतों की असलियत के रंग में रंगा वेश्यागामी महन्त हमारे गन्दे धार्मिक जीवन का प्रतिरूप है। सूद पर रुपये देकर वह किसानों का शोषण करता है—महन्त से अधिक महाजन है। अतएव, यह कहा जा सकता है कि 'तितली' का कथाकार हमारे जीवन और समाज के विविध प्रश्नों और समस्याओं पर दृष्टिपात करता है।

'तितली' में हिन्दू सम्मिलित-कुटुम्ब-प्रथा पर विस्तार से विचार किया गया है। इन्द्रदेव के पारिवारिक जीवन में इसे भलीभाँति दिखाया गया है। परिवार के मुख्य प्राणी हैं—श्यामदुलारी और इन्द्रदेव। पति-

उपेक्षिता माधुरी भी कुटुम्ब की सदस्या है। कौटुम्बिक कोमलता में पले भारतीय-हृदय में परस्पर सहानुभूति और सहायता की बड़ी आशायें परम्परागत व्यवस्था के कारण बलवती रहती हैं। सम्मिलित-कुटुम्ब व्यवस्था में सब मनुष्य एक दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होते हैं। किन्तु वर्तमान अर्थप्रधान समाज-व्यवस्था में यह संगठन टिक नहीं सका। अर्थ-विषम जीवन में वैयक्तिक-संचय की आवश्यकता ने सम्मिलित परिवार प्रथा पर प्रहार किया। पारिवारिक सम्बन्ध स्वार्थ-सम्बन्धों में परिणत हो गए। 'तितली' में प्रसाद ने इस समस्या पर अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—'मुझे धीरे-धीरे विश्वास हो चला है कि भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब की योजना की कड़ियाँ चूर चूर हो रही हैं। वह आर्थिक संगठन अब नहीं रहा, जिसमें कुल का एक प्रमुख सबके मस्तिष्क का संचालन करता हुआ रुचि की समता का भार ठीक रखता था। मैंने जो अध्ययन किया है, उसके बल पर इतना तो कही सकता हूं कि हिंदू समाज को बहुत सी दुर्बलताएँ इस खिचरी कानून के कारण हैं। प्रत्येक प्राणी अपनी व्यक्तिगत चेतना का उदय होने पर एक कुटुम्ब में रहने के कारण अपने को प्रतिकूल परिस्थिति में देखता है। इसलिए सम्मिलित कुटुम्ब का जीवन दुःखदायी हो रहा है।' श्यामदुलारी और इन्द्रदेव के भेदभाव को माधुरी के स्वार्थ भाव ने और भी बढ़ा दिया था। उधर इन्द्रदेव की व्यक्तिगत चेतना अपने रूढ़िवादी परिवार से समझौता नहीं कर पाती। अतएव वह अपने को नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियों में पाते हैं, जहाँ मिल-जुल कर रहना दुस्कर है। इसीलिए पारिवारिक जीवन की सुख-शान्ति उन्हें अनुपलब्ध है।

वर्तमान-काल में अर्थ समाज-संगठन की आधारभूत शक्ति है। व्यक्तिगत और पारिवारिक सुख-शान्ति मुख्यतः अर्थ पर निर्भर है। सम्पत्ति के लिए षडयन्त्रों की सृष्टि हो चली है। इधर हिंदू समाज के विघटन में सम्मिलित पारिवारिक अर्थ-व्यवस्था का महत्वपूर्ण हाथ है। वर्तमान जीवन में यह अनिवार्य-सा है। माधुरी का इन्द्रदेव के प्रति विरोध भाव और प्रतिद्वन्द्विता आर्थिक सुविधा की आवश्यकता के आधीन है।

प्राचीन-व्यवस्था में सम्मिलित-परिवार की आय का आधार भूमि थी। भूमि के उत्पादन पर सब प्राणियों का निर्वाह निर्भर था। वर्तमान काल में, विशेष रूप से नगरों में मध्यवर्ग के उदय से, नवीन अर्थ-व्यवस्था का जन्म हुआ। इसमें निर्वाह का आधार नौकरी थी। फलस्वरूप प्राचीन कुटुम्ब-व्यवस्था का एकाधार न रहा। अलग कमाओ और खाओ की भावना प्रबल हो उठी। अर्थ की विडम्बना ने सम्मिलित-परिवार प्रथा को जर्जर कर दिया। हिन्दू-धर्म और समाज का यह विशिष्ट स्तम्भ वर्तमान युग में गिर रहा है। नगर के मध्यवर्गीय समाज में आर्थिक प्रभाव इस संस्था को नष्ट कर रहे हैं। गाँव की दशा भी आशाप्रद नहीं है। प्राचीन संस्कारसम्पन्न प्राणियों का मोह भी विघटन की इस प्रक्रिया को रोक नहीं सका है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में ग्रामीण-समाज की सम्मिलित परिवार प्रथा को टूटते दिखाया है। प्राचीन कौटुम्बिक प्रणाली के प्रति मोह ही होरी की अनेक विपत्तियों का कारण है। वह भाइयों से पृथक् होने के उपरान्त भी सम्मिलित-परिवार-प्रथा को ढोये जाता है। संस्कारों की रूढ़ि उसे मिटा देती है। फिर भी परिवार चल नहीं पाता। भाई शत्रु बन जाते हैं। पुत्र गोबर अपनी पत्नी झुनियाँ को लेकर नगर में जा बसता है। वस्तुतः प्राचीन सम्बन्ध नई अर्थ-व्यवस्था में जर्जर हो गए हैं। आज के युग में वे चल नहीं सकते। *'तितली' में प्रसाद अभिजात्य-वर्ग* की कौटुम्बिक जर्जरता का चित्रण करते हैं। प्रेमचन्द ने इस विषय को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से चित्रित किया है। प्रसाद की अपेक्षा उनका कथा-साहित्य व्यापकता में विस्तृत है, इसलिए उन्हें यथेष्ट अवकाश प्राप्त था। प्रसाद केवल 'तितली' ही में इस विषय की विवेचना करते हैं। 'कंकाल' का विषय सर्वथा भिन्न है। उनकी अधिकांश कहानियाँ सौन्दर्य-वादी-स्वच्छतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। अतएव विषय के विस्तृत चित्रण का अवकाश न था।

'तितली' में कथाकार ने दिखाया है कि सम्मिलित-परिवार-प्रथा के प्रति विरोधात्मक भावना समाज में घर कर गई है। नर-नारी सब उससे

आक्रान्त है। 'तितली' के समाज में नारी का इस प्रथा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थ-पराधीन नारी के हृदयगत विद्रोह ने पारिवारिक जीवन को और भी जर्जर कर दिया है। प्रसाद ने ठीक ही लिखा है—'स्त्रियों को उनकी आर्थिक पराधीनता के कारण, जब हम स्नेह करने के लिए बाध्य करते हैं, तब उनके मन में विद्रोह की सृष्टि भी स्वाभाविक है। आज प्रत्येक कुटुम्ब उनके इस स्नेह और विद्रोह के द्वन्द्व से जर्जर और संगठित है। हमारा सम्मिलित-कुटुम्ब उनकी इस आर्थिक पराधीनता की अनिवार्य असफलता है। उन्हें चिरकाल से वंचित एक कुटुम्ब के आर्थिक-संगठन को ध्वस्त करने के लिए दिन-रात चुनौती मिलती रहती है। जिस कुल से वे आती हैं, उस पर से ममता हटती नहीं, यहाँ भी अधिकार की कोई संभावना न देखकर, वे सदा घूमने वाली गृहहीन अपराधी जाति की तरह प्रत्येक कौटुम्बिक-शासन को अव्यवस्थित करने में लग जाती हैं। यह किसका अपराध है? प्राचीन काल में स्त्री-धन की कल्पना हुई थी। किन्तु आज उसकी जैसी दुर्दशा, जितने काण्ड उसके लिए खड़े होते हैं, वे किसी से छिपे नहीं।' यहाँ कथाकार स्पष्ट ही इस समस्या को अर्थ-प्रमुख मानता है। वह मनोवैज्ञानिक कारण भी देता है किन्तु उसकी मूल आर्थिक अनिवार्यता को हमारे सम्मुख रखता है। हिन्दू-परिवार में नारी-जीवन की विडम्बना भलीभाँति स्पष्ट करते हुए प्रसाद ने लिखा है—'स्त्री के लिए पर्याप्त रुपया या सम्पत्ति की आवश्यकता है। पुरुष उसे घर में लाकर जब डाल देता है तब उसकी निज की आवश्यकताओं पर बहुत कम ध्यान देता है। इसलिए मेरा भी अब यही मत हो गया है कि स्त्री के लिए सुरक्षित धन की आवश्यकता होनी चाहिए.........स्त्री को स्वावलम्बन से जब पुरुष लोग हटाकर उसके भाव और अभाव का दायित्व अपने हाथ में ले लेते हैं, तब धन को छोड़ कर दूसरा उनका क्या सहारा है?' प्रसाद यहाँ स्पष्ट मत देते हैं कि आर्थिक दृष्टि से पराधीन हिन्दू-नारी के लिए सुरक्षित धन की आवश्यकता है। नारी का जीवन पुरुष की दया पर निर्भर है। परावलम्बी स्त्री-जाति के लिए धन की व्यवस्था होनी चाहिए।

यदि यह व्यवस्था नहीं होती है तो विद्रोहात्मक भावना से परिवार और भी आक्रान्त रहेगा।

कथाकार के समाज-चिन्तन के व्यावहारिक निष्कर्ष भी यथेष्ट पुष्ट हैं। धन-सम्पत्ति के लिए निकट के सम्बन्धियों में जो खींचा-तानी चला करती है, उसे लक्ष्य करके प्रसाद ने लिखा है—'यह भीषण आर्थिक युग है। जब तक संसार में कोई ऐसी निश्चित व्यवस्था नहीं होती कि प्रत्येक व्यक्ति बीमारी में पथ्य और सहायता तथा बुढ़ापे में पेट के लिए भोजन पाता रहेगा, तब तक माता-पिता को भी पुत्र के विरुद्ध अपने लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करनी होगी।' कथाकार का अभिप्राय यह है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की आवश्यकता तब नहीं रहेगी जब व्यक्ति की आवश्यकताएँ समाज पूरी करेगा। किन्तु जब तक यह संभव नहीं है तब तक सम्पत्ति के निमित्त पिता-पुत्र में द्वन्द्व संभव है। श्यामदुलारी अधिकार और सम्पत्ति के प्रति सचेष्ट थीं, वह स्वरक्षा के लिए ही। मृत्यु-शय्या पर ही उनमें त्याग-भाव उदित हुआ। इस व्यक्तिगत स्वार्थसत्ता का अन्त तभी संभव है जब समाज व्यक्ति की आवश्यकताओं का दायित्व ग्रहण करे।

'तितली' में कथाकार ने ग्राम-जीवन का चित्रांकन भी किया है। यह चित्रण प्रेमचन्द के इतविषयक चित्रण के समान विस्तृत नहीं है। पर ग्राम जीवन के कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर दृष्टि डाली गई है। प्रसाद ने देहातियों की दरिद्रता पर भी दृष्टिपात किया है। कृषक जीवन की विवशता से वे भली भाँति परिचित ज्ञात होते हैं—'धामपुर के कई गाँवों में पाला ने खेती चौपट कर दी थी। किसान व्याकुल हो उठे थे। तहसीलदार की कड़ाई और भी बढ़ गई थी। जिस दिन रामजस का भाई पथ्य के अभाव से मर गया और उसकी माँ भी पुत्र शोक में पागल हो रही थी, उसी दिन जमींदार की कुर्की पहुँची। पाला से जो कुछ बचा था, वह जमींदार के पेट में चला गया।' अधिकांश किसानों का जीवन ऐसा ही दुःख-दरिद्रतामय है। मँहगू ऐसे कुछ सम्पन्न किसान भी हैं किन्तु अधिक अभाव-पीड़ित रामजस जैसे हैं जो, समझने लगे हैं कि 'पेट के प्रश्न को सामने रख कर शक्तिसम्पन्न पाखंडी

लोग, अभाव-पीड़ितों को सब तरह के नाच नचा रहे हैं। फलस्वरूप उनमें कुछ विद्रोहात्मक भावना है। प्रसाद भी प्रेमचन्द की भाँति जमींदारी को अच्छी व्यवस्था नहीं समझते और न कर्मचारियों को भले मानुष। उन्होंने धामपुर के तहसीलदार के काले कारनामों को खोल कर दिखाया है और उसे पूरा खल चित्रित किया है। तितली के इन शब्दों में प्रसाद के इत-विषयक चिंतन का सामान्य परिचय प्राप्त हो जाता है—'जमींदार साहब के रहते वह सब कुछ नहीं हो सकेगा। सरकार कुछ कर नहीं सकती। उन्हें अपने स्वार्थ के लिए किसानों में कलह कराना पड़ेगा। अभी-अभी देखिए न, धूर के लिए मुकदमा हाईकोर्ट में लड़ रहा है। तहसीलदार को कुछ मिला। उसने वहाँ के एक किसान को उभाड़ कर धूर न फेंकने के लिए मार-पीट करा दी। वह धूर फेंकना बन्द कर उस टुकड़े को नजराना लेकर दूसरे के साथ बन्दोबस्त करना चाहता है। यदि आप लोग वास्तविक सुधार करना चाहते हों, तो खेतों के टुकड़ों को निश्चित रूप में बाँट दीजिए और सरकार उन पर मालगुजारी लिया करे।' यहाँ प्रसाद भूमि-समस्या सम्बन्धी अपना समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

प्रसाद ने इस उपन्यास में ग्राम-सुधार की योजना भी प्रस्तुत की है। सुधार के आवश्यक उपकरणों की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है—'शैला की योजना के अनुसार किसानों का एक बैंक और एक होमियोपैथी का निशुल्क औषधालय सबसे पहले खुलना चाहिए। गाँव का जो स्कूल है उसे भी अधिक उन्नत बनाया जा सकता है......एक अच्छा सा देहाती बाजार बसाना होगा, जिसमें करघे के देहाती कपड़े, अन्न, बिसातीखाना और आवश्यक चीजें बिक सकें। गृहशिल्प को प्रोत्साहन देने के लिए वहीं से प्रयत्न किया जा सकता है। किसानों में खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े बदल कर उनका एक जगह चक बनाना होगा, जिसमें खेती की सुविधा हो।' ग्राम-सुधार की यह योजना व्यावहारिक है। गाँव की आर्थिक और मानसिक उन्नति में इसका योग महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। प्रसाद ने यह मत भी व्यक्त किया है कि नगर का शिक्षित वर्ग ग्राम सुधार में अच्छा योग दे

सकता है। इसके लिए उसे त्याग करना होगा। प्रसाद सुधार-पथ की विघ्न-बाधाओं को विस्मृत नहीं कर देते हैं। उनका विश्वास है कि पारस्परिक सहयोग और सहायता से इन पर विजय प्राप्त की जा सकती है। उपन्यास के अन्त में प्रसाद धामपुर के सुधार का चित्रण कर अपने विश्वास को प्रतिफलित करते हैं।

उद्देश्य

'तितली' में प्रसाद सम्मिलित-परिवार-प्रथा और ग्राम-सुधार के पृथक विषयों को एक साथ लेकर चले हैं। सुलझी कथा-वस्तु के कारण कथाकार को लक्ष्यसिद्धि में सफलता मिली है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द ने लखनपुर गाँव को स्वर्ग बना कर दिखाया है, 'तितली' में प्रसाद धामपुर का स्वर्ग तुल्य चित्रण करते हैं। अन्तर इतना है कि प्रेमचन्द जमींदारी-प्रथा के अन्त में गांवों का स्वर्ग देखते हैं, प्रसाद सहयोग और सक्रिय सुधार द्वारा ग्राम-जीवन को उन्नत दिखाते हैं। जयशंकर प्रसाद सिद्धान्त रूप में जमीन्दारी को दूषित व्यवस्था मानते हुए भी उन्नति के लिए पारस्परिक सहयोग और सहायता मुख्य समझते हैं। धामपुर को स्वर्ग बनाने में शैला की कर्मनिष्ठा, सरकार का सहयोग और स्मिथ की सेवा ने योग दिया था। व्यावहारिक दृष्टि से प्रसाद समस्या के अधिक निकट हैं किंतु सत्य यह है कि लखनपुर और धामपुर दोनों कल्पना की सृष्टि हैं। भारत के रूढ़िवादी, दरिद्र, अस्वस्थ और अशिक्षित गाँवों से उनका कोई साम्य नहीं है। जब तक भारतीय ग्राम-जीवन का उद्धार नहीं होता तब तक लखन-पुर और धामपुर स्वप्न हैं; यथार्थ नहीं।

इरावती

'इरावती' प्रसाद का अपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी कथा मौर्य-साम्राज्य के पतन और शुंगवंश के प्रादुर्भाव से सम्बन्ध रखती है। पतनोन्मुख बौद्ध-धर्म और मौर्य-साम्राज्य को हटा कर पुष्यमित्र ने ब्राह्मण धर्म और शुङ्ग-वंश की प्रतिष्ठा की थी—इस ऐतिहासिक आधार पर 'इरावती' की कथावस्तु का निर्माण हो रहा था। प्रसाद ऐतिहासिक तथ्य का, विधायिनी-कल्पना के संयोग से, कुशलतापूर्वक निर्वाह कर रहे थे। यदि पूर्ण हो पाता तो यह उपन्यास हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों में विशिष्ट स्थान प्राप्त करता।

कथा इस प्रकार है—

उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में प्रदोप-पूजन अवसर पर देवदासी इरावती के नृत्य-समारोह में मालव अग्निमित्र भी उपस्थित था। वह इरावती से प्रेम करता था। उसी अवसर पर मगध का कुमारामात्य बृहस्पतिमित्र वहाँ पहुँचा। वह इरावती पर मुग्ध हो जाता है किंतु कामना सिद्धान्त की ओट में खेलती है। वह मन्दिर के नृत्य-गान को विलासिता के प्रचार का निन्दनीय प्रदर्शन घोषित कर इनका निषेध करता है। सम्राट शतधंवा के बौद्ध-शासन में प्रधान नीति धर्म संशोधन पर आधारित बता वह इरावती को बौद्ध-संघ में भेजने की व्यवस्था करता है। उसी समय उसे ज्ञात होता है कि सम्राट शतधनुष का निधन हुआ है। राज्य-भार सँभालने के लिए वह कुसुमपुर चला जाता है। इरावती भिक्षुणियों के साथ

संघ भेज दी जाती है।

उद्दंड और विलासी बृहस्पतिमित्र मगध का शासक हो गया। उसके हृदय में इरावती को अधिकृत करने की उत्कट इच्छा थी। सैनिकों द्वारा उसने इरावती को संघ से कुसुमपुर लाने की व्यवस्था की। उनसे बचने के लिए इरावती शिप्रा के जल में कूद पड़ी। अग्निमित्र ने उसे जल से निकाला, पर दोनों को वन्दी वन कुसुमपुर जाना पड़ा।

कलिंग सम्राट खारवेल की बढ़ती शक्ति से सशंकित होकर बृहस्पतिमित्र ने रोहिताश्व दुर्ग का संगठन आवश्यक समझा। महादण्डनायक पुष्यमित्र की प्रार्थना पर उनके पुत्र अग्निमित्र को खारवेल का सामना करने के लिए महानायक नियुक्त किया गया। वन्दीगृह से उसे मुक्ति मिली। पर पुष्यमित्र को यह जान कर क्षोभ हुआ कि अग्निमित्र अब भी 'अज्ञातकुलशीला प्रतिवेशिनी की सुन्दरी बालिका इरावती के पीछे भटक रहा है। उसने अग्निमित्र को कर्त्तव्य के प्रति सजग किया किन्तु अग्निमित्र इरावती को विस्मृत नहीं कर पाता। इधर कालिन्दी के परिचय ने उसे और भी जटिल परिस्थितियों में डाल दिया। कालिन्दी के समक्ष ही गंगाधर-मंदिर के पुजारी ने मृत्यु-शय्या पर अग्निमित्र को नन्दराज की गुप्त निधि का रहस्य ताम्र-पत्र दिया था। कालिन्दी उसे स्वयं चाहती थी, वह मगध के विश्रुत नन्दराज का रक्त है। वह मगध में गुप्त षड्यन्त्र की संचालिका है। मृत सम्राट शतधनुष ने उसे पकड़ मँगवाया था। संयोगवश जिस दिन वह सुगांग प्रासाद में लाई गई उसी दिन दुर्घटना से शतधंवा की मृत्यु हो गई। पर कालिन्दी वहीं रह गई। मौर्यों के प्रति उसके हृदय में घृणा थी। वह मौर्यों का विनाश चाहती थी। षडयन्त्रकारी विद्रोहियों की गुप्त संस्था स्वस्तिक दल का उसने संगठन किया था। अग्निमित्र ने उसका भेद जान लिया। उसने नन्दराज का ताम्रपत्र कालिन्दी को दे दिया क्योंकि उसकी अधिकारिणी वही थी। उधर कालिन्दी अग्निमित्र के प्रणय की प्रार्थिनी बनी किन्तु अग्निमित्र के हृदय में इरावती बसी थी।

इरावती को कुक्कुटाराम के भिक्षुणी विहार में भेज दिया गया था।

बौद्ध-धर्म के पाखण्डमय जीवन से विरक्त हो वह विहार त्याग कर चली गई। महास्थविर ने इसकी सूचना धर्म महामात्र को दी। अग्निमित्र उसे खोजता हुआ गंगाधर मन्दिर में कालिन्दी से मिला। इरावती उसी के आश्रय में थी। राज्य के सैनिक इरावती को खोजते हुए वहाँ पहुँचे। अग्निमित्र ने उनका प्रतिरोध किया। किंतु इरावती ने रक्तपात का निषेध किया और स्वयं बन्दी हो गई। बृहस्पतिमित्र की रंगशाला में उसे पहुंचाया गया। बृहस्पतिमित्र उस पर बलात्कार करना चाहता था किंतु कालिंदी के आगमन से इरावती की रक्षा होती है। कालिंदी सम्राट शतधनुष के समय से ही अन्तःपुर के एक कोने में पड़ी थी किंतु उसका बृहस्पतिमित्र से साक्षात्कार नहीं हुआ था। कामुक सम्राट कालिन्दी के उद्दीप्त सौंदर्य से वशीभूत हो गया। जिसके विरुद्ध वह षडयन्त्र रच रही थी, उसे अपनी मुट्ठी में पा कालिन्दी ने भी प्रेमनाट्य किया। मूर्ख सम्राट उस अभिनय को वास्तविकता मान बैठा। यहाँ तक कि राजनीति में भी कालिंदी की मंत्रणा बृहस्पतिमित्र को ग्राह्य थी।

उपन्यास के अन्तिम पृष्ठों में घटना-चक्र तीव्रता से चलता है। कलिंग का खारवेल स्वर्ण की जिन-मूर्ति वापस लेने के लिए मगध आ पहुँचता है। वह श्रेष्ठि धनदत्त के घर छद्मवेश में प्रतिमा के लिए आभूषण लेने आया। वहाँ कालिन्दी और इरावती का आकर्षण उसे रात्रि के लिए रोक लेता है। धनदत्त द्वारा निमंत्रित अग्निमित्र भी वहाँ आता है। तभी स्वस्तिक दल के सैनिक आकर धनदत्त का घर चारों ओर से घेर लेते हैं। अग्निमित्र खारवेल का परिचय पाने पर उसकी रक्षा का वचन देता है·········· अपरिसमाप्त उपन्यास की कथा अपूर्ण रह जाती है।

'इरावती' में दो प्रकार के पात्र हैं—ऐतिहासिक और काल्पनिक। बृहस्पतिमित्र, पुष्यमित्र, अग्निमित्र और खारवेल ऐतिहासिक पात्र हैं। कालिन्दी, इरावती, धनदत्त, मणिमाला काल्पनिक हैं। ऐतिहासिक पात्रों की अपेक्षा काल्पनिक पात्रों के चरित्र अच्छे बन पड़े हैं। 'इरावती' में सब स्त्री-चरित्र काल्पनिक हैं। स्त्री-पात्रों में कथाकार की कल्पना और

अनुभूति का सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है। कालिन्दी और मणिमाला के चरित्र में यह द्रष्टव्य है। इरावती का चरित्र अविकसित रहने पर भी पाठक की सहानुभूति का अधिकारी वन जाता है। उसकी जीवनव्यापी वेदना का प्रसाद की भाव-प्रवणता बड़ा मार्मिक चित्रण करती है। उसका चरित्र पूर्ण प्रभावात्मक नहीं है, पर संवेदन जगाने की क्षमता रखता है। प्रसाद की विधायिनी-कल्पना ने अनैतिहासिक पात्रों की सृष्टि में विशेष सफलता प्राप्त की है।

'इरावती' की पात्रसृष्टि सबल नहीं है। प्रसाद की भावात्मक शैली चरित्र-चित्रण के समुचित विकास का प्रत्याख्यान करती है, दूसरे उपन्यासकार ऐतिहासिक वातावरण सृष्टि में दत्तचित्त रहने के कारण चरित्र-चित्रण की ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दे पाया है। उपन्यास की नायिका इरावती का चरित्र-विकास भी समुचित नहीं हुआ है। मुख्य पात्र की गरिमा प्राप्त करने पर भी उसका चरित्र प्रभावविशिष्ट नहीं है। वस्तुतः प्रसाद के उपन्यासों में चरित्र-चित्रण कला का पूर्ण उत्कर्ष नहीं हो पाया है। कथाकार की भाव-चित्रण प्रवृत्ति इसका एक मुख्य कारण है।

उपन्यास के पात्रों का चरित्र-परिचय निम्नांकित है—

वृहस्पतिमित्र—मौर्य-साम्राज्य का कुमारामात्य वृहस्पतिमित्र शतधनुष के निर्वाण पर सम्राट बनता है। वह पाखण्डी, अनाचारी और कामुक है। धर्म की ओट में विलास-लीला की आयोजना करता है। इरावती को बौद्ध विहार से अन्तःपुर में लाकर बलात्कार करना चाहता है। असफल होने पर कालिन्दी की ओर आकृष्ट होता है। संक्षेप में, वृहस्पतिमित्र अत्याचारी, कापुरुष और विषयलोलुप सम्राट है।

पुष्यमित्र—मालव पुष्यमित्र मौर्य-साम्राज्य का महादण्डनायक है। वह पराक्रमी, कूटनीतिज्ञ और कर्तव्यनिष्ठ है। कर्तव्यनिष्ठा की आड़ में उसकी कूटनीति का चक्र चला करता है। यदि उपन्यास पूर्ण हो पाता तो निस्सन्देह हम उसे शुङ्गवंश के प्रतिष्ठापक और ब्राह्मण-धर्म के पुनरुद्धारक के रूप में देखते। महत्वाकाँक्षा से परिचालित उसका हृदय अपने

पुत्र को भी कर्मनिष्ठ देखना चाहता है। अग्निमित्र के प्रति उसका स्नेह उसके कठोर जीवन का एक मात्र कोमल अंश है, पर पुत्र की उच्छृंखलता से तंग आकर उसने कहा था—'अच्छा, तुम जैसे चाहो रहो परन्तु मेरी पद मर्यादा का तुम्हें ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा, मैं केवल तुम्हारा पिता ही नहीं, मगध का दण्डनायक भी हूं।' उसके चरित्र में कर्तव्य और स्नेह का द्वन्द्व द्रष्टव्य है।

अग्निमित्र—पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र सच्चा प्रेमी, वीर और साहसी युवक है। इरावती के प्रेम में पिता से वियुक्त हो जाता है। इरावती के लिए वह साम्राज्य और सम्राट का कोपभाजन बनने से नहीं डरता। उसकी दुःस्साहसिकता बन्दी बन कर भी बृहस्पतिमित्र के सम्मुख निर्भीक आचरण करती है। उसके निरुद्देश्य जीवन का अन्त तब होता है जब पिता के आग्रह से वह खारवेल के विरुद्ध सेनानायक बनना स्वीकार करता है। पर वह बृहस्पतिमित्र का विरोधी है। इरावती का प्रेमी होने के कारण बृहस्पतिमित्र के प्रति उसकी घृणा स्वाभाविक है। उसका प्रेम अटल है। पिता का विरोध, कालिन्दी का उद्दीप्त सौन्दर्य, कोई भी उसे इरावती से विमुख नहीं कर पाता। उसमें अपने पिता की भाँति कूटनीतिज्ञता और गम्भीरता नहीं है किंतु उसके वीरत्व में भी संशय नहीं है। उपन्यास के अन्त में हम उसे खारवेल और धनदत्त की रक्षा में कटिबद्ध देखते हैं।

खारवेल—कलिंगपति महामेघवाहन खारवेल का चित्रण यथेष्ट प्रभावोत्पादक ढंग से करता हुआ कथाकार लिखता है—'स्निग्ध श्याम-वर्ण, दाढ़ी-मूछ मुड़ा हुआ, कंधों तक पीछे लटकी हुई सघन घुँघराली लटें, कौशेय का कंचुक, कमर में कटिबन्ध उसमें छोटी कृपाणी, आँखों में निश्चिन्तता।' खारवेल उपन्यास के अन्त में आता है, अतएव उसका चरित्र-विकास अधिक नहीं हो पाया। वह साहसी, वीर और कलामर्मज्ञ है। विपत्ति में भी अविचल रहता है। धनदत्त के घर स्वस्तिक दल के सैनिकों से घिर जाने पर उसने निर्द्वन्द्व भाव से कहा था—'खारवेल ने जो साहसिक कर्म किया है, तो वह उसका प्रतिकार भी जानता है।'

धनदत्त—कुसुमपुर का श्रेष्ठि धनदत्त वणिकबुद्धिसम्पन्न व्यक्ति है। उसका व्यवसाय है ऋण देना और रत्न बेचना। उसे अपनी युवती पत्नी की अपेक्षा लक्ष्मी से अधिक प्रेम है। स्त्रियों से पातिव्रत्य की आशा रखने वाला यह प्रौढ़ व्यवसायी आन्ध्र की राजगणिका की चाटुकारी करने से नहीं चूकता। वह वणिकों की भाँति डरपोक भी है। स्वस्तिक दल के व्यक्तियों से घिर जाने पर उसके हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं।

इरावती—महाकाल-मन्दिर की देवदासी इरावती कामुक बृहस्पतिमित्र की कुदृष्टि का शिकार हो बौद्ध-संघ में भेज दी जाती है। उसके कला-प्रेमी हृदय को भिक्षुकों का जीवन-दर्शन प्रभावित नहीं कर पाता। वहाँ से निस्तार पाते ही वह बृहस्पतिमित्र की रंगशाला में बन्दी हो जाती है। बृहस्पतिमित्र उस पर बलात्कार करना चाहता है किन्तु कालिन्दी के आगमन से उसकी रक्षा होती है। अग्निमित्र से उसे आंतरिक स्नेह है। पर अग्निमित्र एक बार उसे छोड़ गया था। तब से उसके जीवनव्यापी कष्टों ने उसकी व्यथा को अन्तर्मुखी बना दिया। अग्निमित्र से कहे इन शब्दों में उसकी मनोव्यथा व्यक्त हुई थी—'अग्नि! मैं जीवन रागिनी में वर्जित स्वर हूं।' मर्मव्यथा की राख के नीचे उसके दलित अभिमान की अग्नि बुझी नहीं थी। यही अभिमान अग्निमित्र और उसके अभिन्न होने में बाधक था।

कालिन्दी—मायाविनी कालिन्दी का चरित्र रहस्यमय परिस्थितियों में विकास प्राप्त करता है। राजनन्दनी कालिन्दी की धमनियों में नन्दराज का रक्त है। मौर्यों ने नन्दवंश को निर्मूल करने का प्रयत्न किया था, अतएव विद्रोहियों की गुप्त संस्था स्वस्तिक-दल का संगठन कर वह मौर्यों का नाश करना चाहती है। उसने अग्निमित्र से कहा था—'मौर्यों ने नन्दों का विनाश किया था। मैं मौर्यों का विनाश करूँगी।' राजनीति चतुरा इस नारी में महत्वाकाँक्षा और प्रणय साथ-साथ विकसित होते हैं। अग्निमित्र से उसने कहा था—'देखो मगध का साम्राज्य तुम्हारा होगा और तुम मेरे, केवल मेरे हो जाओ।' किन्तु प्रेम उसकी महत्वाकाँक्षा के

पथ में व्यवधान नहीं खड़ा करता। वह बृहस्पतिमित्र को प्रेमनाश्च द्वारा अपनी मुट्ठी में कर लेती है, इधर खारवेल को कुसुमपुर खींच लाती है। कालिन्दी के चरित्र को सौन्दर्य, बुद्धि, कौशल, साहस, महत्वाकांक्षा और रहस्यमयता ने मिल कर आकर्षक बना दिया है।

मणिमाला—प्रौढ़ श्रेष्ठि धनदत्त की युवती पत्नी मणिमाला सरलहृदया रमणी है। मानापमान भाव बढ़ा-चढ़ा है किन्तु जितने शीघ्र क्रोध आता है उतने शीघ्र विलीन भी हो जाता है। वह अन्य प्राणियों से आत्मीयता शीघ्र स्थापित कर लेती है। सामान्य परिचय मात्र से कालिन्दी और इरावती से उसने आत्मीयता कर ली थी। उसका चरित्र-परिचय उपन्यास के अन्तिम पृष्ठों में संगृहीत है, अतएव संक्षिप्त है। पर जितना है, उतना आकर्षक है।

'इरावती' का ऐतिहासिक वातावरण-चित्रण सफल है। युगसम्मत चित्रांकन में प्रसाद का प्राचीन साहित्य और संस्कृति-ज्ञान विशेष सहायक हुआ है। उपन्यास में मौर्य-काल की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का अच्छा चित्रण है। मौर्य-साम्राज्य की धर्मनीति से जर्जर शासन-व्यवस्था बाहरी आक्रमणों और भीतरी षडयन्त्रों से और भी दुर्बल हो गई थी। कलिंग का चक्रवर्ती खारवेल और पश्चिम के यवन मौर्यों की आंतरिक दुर्बलता से भलीभाँति परिचित थे। इसीलिए साम्राज्य के दोनों ओर से आक्रमण का दबाव पड़ रहा था। धर्म विजय के सामने शस्त्र-विजय को गौण बताते रहने का यह अवश्यंभावी फल था कि सैनिक-शक्ति ह्रासोन्मुख थी। मौर्य सम्राट बौद्ध धर्म के प्रचारक और अनुयायी थे। राज्यानुग्रह पर टिका बौद्धधर्म पतनोन्मुख था। उसके प्रताप का प्रचण्ड सूर्य ठंडा पड़ कर अस्त हो रहा था। प्रसाद ने दिखाया है कि जनता का बड़ा भाग आर्य-धर्म में विश्वास करता था। उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में आर्य-धर्म की जीवन्त शक्ति केन्द्रीभूत थी। कथाकार ने बौद्ध और ब्राह्मण धर्म का संघर्ष भी चित्रित किया है। उपन्यास की वातावरण-योजना में तत्कालीन समाजव्यापी धार्मिक और राजनीतिक

जीवन के चित्र विशेष सहायक हैं।

'इरावती' में प्रसाद ने बौद्धों के अनात्मवाद के विरुद्ध आर्यों के आत्मवाद की प्रतिष्ठा की है। अविश्वासप्रसूत अनात्म सिद्धान्त के लोक विरोधी प्रभाव की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है—'सर्व साधारण आर्यों में अहिंसा, अनात्म और अनित्यता के नाम पर जो कायरता, विश्वास का अभाव और निराशा का प्रचार हो रहा है, उसके स्थान पर उत्साह, साहस और आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा करनी होगी।' इसी उपन्यास में अन्यत्र लिखा है—'अनात्म के वातावरण में पला हुआ यह क्षणिक विज्ञान उस शाश्वत सत्ता में सन्देह करता है।' यहाँ स्पष्ट है कि प्रसाद बौद्धों के क्षणिकवाद और अनात्मवाद के विरोधी हैं। प्रसाद की प्रारम्भिक रचनाओं में बौद्ध-धर्म का प्रभाव करुणावाद के रूप में अंकित है। पर कथाकार की उत्तरकालीन विचारधारा आनन्दवाद की समर्थक है, जिसका आधार है आत्मा में विश्वास करना। प्रसाद ने 'इरावती' में लिखा है—'एक दिव्य अतिभाव है। वह है आत्मा की अग्नि! जिसमें अन्धकार ईंधन बन कर जलता है। उस तेज में सब विशुद्ध, दिव्य और ग्राह्य हो जाते हैं। आनन्द की यही योजना अपनी विचार-पद्धति में ले आने की आवश्यकता है......हम आत्मवान् हैं, हमारा भविष्य आशामय है, इस आर्य-भाव का प्रचार आवश्यक है......।' इस उपन्यास में प्रसाद अपनी उत्तरकालीन विचारधारा अनेक स्थलों पर सशक्त ढँग से व्यक्त करते हैं।

'इरावती' का विषय 'कंकाल' और 'तितली' की अपेक्षा प्रसाद की प्रकृति के अधिक निकट था। इतिहास के प्रति उनका आकर्षण सर्वविदित है। अतएव कहा जा सकता है कि औपन्यासिक क्षेत्र में 'इरावती' सफल ऐतिहासिक-उपन्यास होता। जिस चित्रमयी शैली में प्रसाद मौर्य-साम्राज्य के अंतिम दिनों का चित्रण कर रहे थे, वह कथा का निपुण वेश-विन्यास करने में समर्थ है। अपूर्ण कृति की लोकप्रियता इसका प्रमाण है।

कहानियाँ की आलोचना

कहानी के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने उपन्यास से पहले प्रवेश किया था। उनका प्रथम कहानी-संग्रह 'छाया' १९१२ में प्रकाशित हुआ था, प्रथम उपन्यास 'कंकाल' १९२९ में। वस्तुतः कहानी, कविता और नाटक के क्षेत्रों में प्रसाद ने एक साथ ही प्रवेश किया था। उपन्यास की रचना प्रायः बीस वर्ष उपरांत की। प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी रोमान्टिक प्रतिभा के लिए कहानी के प्रति प्रारम्भ से ही आकर्षण स्वाभाविक था क्योंकि उसमें उन्हें अपनी अनुभूति और कल्पना के समन्वय का अवसर मिला।

प्रसाद के पाँच कहानी-संग्रह हैं। 'छाया' (१९१२) 'प्रतिध्वनि' (१९२६) 'आकाश दीप' (१९२९) 'आँधी' (१९३१) 'इन्द्रजाल' (१९३६) इन संग्रहों में प्रसाद की कहानियों के विकास-अध्ययन की पूरी सामग्री उपलब्ध है। काव्यमय भावुकता, कोमल अनुभूति और चित्रमय शैली का प्रसाधन प्रारम्भिक कहानियों से प्रौढ़ कहानियों तक न्यूनाधिक मात्रा में अव्याहत मिलेगा। कहानियों के इन पाँच संग्रहों में प्रसाद-साहित्य के लगभग पचीस वर्षों के कृतित्व से हमारा परिचय होता है। कहानियों का विकास प्रसाद की कला और साहित्य-संस्कार के क्रमागत विधान की अविच्छिन्न परम्परा से हमारा परिचय कराता है।

छाया

'छाया' (१९१२) के प्रथम संस्करण में केवल पाँच कहानियाँ थीं। द्वितीय संस्करण में कुछ और कहानियाँ जोड़ कर संख्या ग्यारह कर दी

गई। तृतीय संस्करण में इन कहानियों का संस्कार भी लेखक ने किया था, अतः अपने पूर्व रूप से यह कुछ भिन्न हो गई हैं। 'छाया' की कहानियों का सर्वप्रथम प्रकाशन 'इन्दु' पत्रिका में हुआ था। प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' भी इस संग्रह में है। 'छाया' की कहानियाँ प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियाँ हैं। अतएव इनमें ऊँचे शिल्पविधान या कला के दर्शन सम्भव नहीं हैं। पर प्रसाद के कथा-साहित्य के, विशेष रूप से कहानियों के विकास-अध्ययन की दृष्टि से इनका ऐतिहासिक महत्व है। प्रसाद-साहित्य की प्रारम्भिक प्रवृत्तियों की छाप इन कहानियों में दृष्टिगत होती है जिससे उनके विकास-अध्ययन मे सहायता मिलती है।

'छाया की ग्यारह कहानियों के नाम इस प्रकार हैं—तानसेन, चन्दा, ग्राम, रसिया बालम, शरणागत, सिकन्दर की शपथ, चित्तौर उद्धार, अशोक, गुलाम, जहाँआरा, मदन मृणालिनी।

'तानसेन' ऐतिहासिक कहानी है। ग्वालियर दुर्ग का किलेदार मुगल सम्राट अकबर के सरदारों में से था। एक दिन मृगया से लौटते समय उसने सरोवर के निकट रामप्रसाद को गाते सुना। रामप्रसाद की स्वर लहरी ने उसे मन्त्र-मुग्ध कर दिया। सरदार उसे ग्वालियर ले आया। वहाँ रामप्रसाद और सरदार की दासी सौसन में प्रेम-अंकुर जम गया। सौसन निपुण गायिका थी। एक दिन उसकी और रामप्रसाद की कला-प्रतिद्वन्द्विता में सरदार ने रामप्रसाद को विजयी घोषित किया। सरदार ने उससे कुछ माँगने का आग्रह किया। रामप्रसाद ने सौसन को माँगा। सौसन दासीत्व से मुक्त कर दी गई। दोनों का प्रेम प्रतिफलित हुआ। इस कहानी में कथातत्व, पात्र एवं वातावरण-योजना की ओर कथाकार की दृष्टि नहीं है। उसका समस्त ध्यान लक्ष्य-संधान की ओर है जो कहानी के अन्त में है। संगीत-द्वन्द्व के विजयी रामप्रसाद से सरदार ने कहा—'रामप्रसाद आज से तुम तानसेन हुए। यह सौसन भी तुम्हारी हुई, लेकिन धर्म से इसके साथ ब्याह करो।'

'तानसेन ने कहा—'आज से हमारा धर्म प्रेम है।' यहाँ कहानीकार

दो हृदयों के सच्चे मिलन, प्रेम में विश्वास प्रकट करता है जिसके लिए धार्मिक या सामाजिक बन्धन की कोई आवश्यकता नहीं। 'तानसेन' की विशेषता इसी में है, अन्यथा यह एक साधारण कहानी है।

'चन्दा' में प्रेम के साथ प्रतिहिंसा और प्रतिशोध भी है। कथा इस प्रकार है—कोल कुमारी चन्दा हीरा से प्रेम करती है किन्तु उसके पिता ने रामू के साथ उसका विवाह स्थिर किया था। हीरा के प्रतिद्वन्दी रामू ने उसे छुरे के प्रहार से घायल कर दिया। चन्दा के पिता ने इस दुष्कृत्य से अप्रसन्न हो पुत्री का विवाह हीरा से करा दिया। चन्दा का पिता कोलों का सरदार था इसलिए रामू विवाह में व्याघात न डाल सका किन्तु उसका हृदय क्रोधाग्नि से प्रज्वलित था। ससुर की मृत्यु के बाद हीरा सरदार हुआ। जब 'राजा साहब' शिकार खेलने आए तब एक घायल चीते की खोज के लिए उसे ही जाना पड़ा। चीते ने उसे धर दबोचा। राजा ने उसकी सहायता के लिए रामू को भेजा किन्तु रामू का हृदय प्रतिहिंसा से भर रहा था। उसने हीरा की सहायता न की। हीरा मारा गया। चन्दा रामू की कदर्य दुष्टता जान गई। उसने पति के हत्यारे से प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। कुछ दिनों बाद राजा साहब पुनः शिकार खेलने आए। इस बार घायल शेर की खोज के लिए रामू को जाना पड़ा। छद्मवेश में चन्दा उसके साथ हो ली। जब घायल शेर रामू पर आक्रमण कर रहा था, तब चन्दा ने रामू को छुरे के प्रहार से मार डाला। किन्तु प्रतिशोध उसकी मनोव्यथा को शान्त नहीं कर पाया। पति से परलोक में मिलने की आकांक्षा लिए उसने उसी छुरे से आत्महत्या कर ली। प्रेम, प्रतिहिंसा, प्रतिशोध और उत्सर्ग की यह कहानी दो अभिन्न हृदयों की दुःखद प्रेम गाथा है। 'तानसेन' सुखान्त है पर 'चन्दा' प्रेम की दुखान्त कहानी है, किन्तु सुखान्त और दुखान्त परिस्थितियों से ऊपर उठकर प्रसाद प्रेम की अमर-भावना की ओर संकेत करते हैं। सच्चा प्रेम सब परिस्थितियों में अविचल रहता है। 'चन्दा' में कथातत्व सूक्ष्म नहीं है; कथानक की रेखाएँ 'तानसेन' की अपेक्षा गहराई से अंकित की गई हैं। कथोपकथन के प्रयोग

में प्रसाद की नाटकीय-प्रतिभा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

'ग्राम' प्रसाद की सर्वप्रथम कहानी मानी जाती है। यह प्रसाद की स्वच्छन्दवादी कहानी-परम्परा से भिन्न है। विषय और वर्णन की दृष्टि से इसे यथार्थोन्मुख कहानी कहना संगत होगा। इसमें कथा की अपेक्षा प्रभावसृष्टि कहानीकार का लक्ष्य है।

'रसिया बालम' में कथाकार एकांतिक प्रेम का अतिशयोक्तिपूर्ण ढँग से चित्रण करता है। इस भावुकताजन्य कहानी का संक्षिप्त परिचय है—अर्बुद-गिरि के राजा की पुत्री के रूप-सौंदर्य की झलक मात्र से युवक बलवन्तसिंह उसका उपासक हो गया। परीक्षा लेने पर राजा उसे अपनी पुत्री के योग्य वर पाता है किन्तु रानी उस दरिद्र से अपनी कन्या का परिणय नहीं करना चाहती। उसने बलवन्तसिंह से छुटकारा पाने के लिए उसे असंभव काम सौंपा जिसकी पूर्ति पर पुत्री के साथ विवाह का वचन दिया। बलवन्तसिंह असफलता के कारण विषपान करता है। राजपुत्री पात्र का अवशेष विष पी जाती है। भावुक कथाकार ने बहुत कुछ मुसलमानी प्रेम-कथाओं की पद्धति पर 'रसिया बालम' की योजना की है। भावातिरेक में प्रसाद अतिशयोक्तिपूर्ण परिस्थितियों की सृष्टि करते हैं किन्तु वे असम्भव नहीं हैं। कहानी की एकान्तिक प्रेम-साधना में यह विश्वास गूँजता रहता है कि प्रेम अमर है। रसिया को विष पीते समय विश्वास था—'मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा क्योंकि मैं तुम्हें नित्य देखना चाहता हूं, और ऐसे स्थान में देखूँगा जहाँ कभी पलक गिरती ही नहीं।' कथानक, पात्र, कथोपकथन आदि कहानी के इसी लक्ष्य के आधीन हैं।

'शरणागत' गदर के समय की परिस्थितियों का चित्रण करती है। यह साधारण कोटि की कहानी है जिसका ऐतिहासिक वातावरण-चित्रण अप्रभावात्मक है।

'सिकन्दर की शपथ' भी ऐतिहासिक कहानी है। मंगलौर के दुर्ग-रक्षण में अफगान अश्वक वीरों का साथ भारतीय योद्धा भी

दे रहे थे। इनके प्रबल पराक्रम से सिकन्दर असफल हो रहा था। सिकन्दर ने धोखे से दुर्गपति को मार कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। संधि-नियमों के अनुसार भारतीय योद्धाओं को वापस जाने की आज्ञा मिली। किन्तु सिकन्दर ने अपना वचन तोड़कर उन पर आक्रमण कर दिया। भारतीय वीरता से लड़ते मारे गये। इस घटना की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। कहानी में सिकन्दर के चरित्र को कालिमामय चित्रित किया गया है। वह धोखे से दुर्गपति को मार डालता है और वचन भंग कर भारतीय योद्धाओं की हत्या करता है। दूसरी ओर, भारतीय क्षत्रिय वीरों—जिनके लिए प्रसाद ने 'राजपूत' शब्द का प्रयोग किया है—के स्वाभिमान और शौर्य का चित्रण है। कथानक, पात्र और कथोपकथन की अपेक्षा यूनानियों का जातीय-चरित्रांकन मुख्य है।

'चित्तौर उद्धार' भारतीय इतिहास के राजपूत-काल से सम्बन्धित कहानी है। ऐतिहासिकता अपेक्षाकृत अधिक है और वातावरणसृष्टि भी प्रभावहीन नहीं है। कथाकार एक ओर चित्तौर-उद्धार के ऐतिहासिक तथ्य की रक्षा करता है, दूसरी ओर हम्मीर के चरित्र-चित्रण का प्रयास भी करता है। उसकी वीरता और उदार विशालहृदयता का परिचय कहानी के आदि से अन्त तक मिलता है।

'अशोक' भी ऐतिहासिक कहानी है। यह किंवदन्ती और ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। किंवदन्ति के अनुसार कुणाल के नेत्र निकाल लिए गए थे किन्तु प्रसाद की भावुकता इस हृदयहीन कर्म के लिए प्रस्तुत नहीं थी, अतएव कुणाल की आँखें नहीं फुड़वाई जाती हैं। यह 'छाया' की सबसे बड़ी ऐतिहासिक कहानी है जिसमें कथानक-तत्व यथेष्ट है। प्रारम्भ, विकास और अन्त के निर्वाह के निमित्त कथाकार प्रयत्नशील है यद्यपि इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिली है। वीताशोक की मृत्यु-कथा लक्ष्यसिद्धि की दृष्टि से आवश्यक है किन्तु कथानक को शिथिल कर प्रभावहीन करती है।

'गुलाम' और 'जहाँनारा' मुगलकालीन ऐतिहासिक कहानियाँ हैं।

'गुलाम' की कथा इस प्रकार है—शाहआलम ने एक सुन्दर गुलाम कादिर की परवरिश की थी पर उसका पुंसत्व नष्ट करा दिया था। कादिर पुरुष-जीवन की अमूल्य वस्तु से वंचित हो गया। सम्राट के प्रति प्रतिहिंसा की अग्नि से उसका हृदय जलने लगा। परिस्थितियों के अनुकूल होते ही उसने शाहआलम के विरुद्ध विद्रोह किया और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। कादिर ने शाहआलम की आँखें निकाल कर अपनी प्रतिहिंसा-राक्षसी को तृप्त किया। इस कहानी का लक्ष्य है—कादिर की कठोर प्रतिहिंसा का चित्रण। लक्ष्यप्राप्ति में कथाकार को सफलता मिली है और कथा का अन्त यथेष्ट प्रभावात्मक है। पात्रों के कथोपकथन में प्रसाद की नाटकीय-प्रतिभा झलक जाती है। 'जहाँनारा' का विषय प्रख्यात है—औरंगजेब का शाहजहाँ को अपदस्थ करना और जहाँनारा की पितृभक्ति, अन्तिम दिनों तक वृद्ध पिता की सेवा करना। जहाँनारा के चरित्र में करुणा परिव्याप्त है। 'गुलाम' और 'जहाँनारा', दोनों में करुणा जाग्रत होती है किन्तु दूसरी में अधिक। 'जहाँनारा' के प्रारम्भ विकास और अन्त में पर्याप्त नाटकीयता है। कथोपकथन के प्रयोग द्वारा इसका सम्वर्द्धन हुआ है।

'छाया' की अन्तिम कहानी 'मदन-मृणालिनी' एक प्रेम-कथा है। इसका कथानक अनेक मोड़ लेता है। घर से भाग कर कलकत्ते आने पर मदन को एक बंगाली सज्जन अमरनाथ बनर्जी के घर आश्रय प्राप्त होता है। बनर्जी महोदय मोतियों का व्यापार करते हैं। समुद्र पार सिलोन में उनका आफिस था, अतएव रूढ़िवादी समाज की दृष्टि में वह धर्मच्युत थे। उनके पुत्र और पुत्री का विवाह समाज-बहिष्कार ने असंभव-सा कर दिया था। इसीलिये वे सपरिवार सिलोन चले गये। मदन भी साथ गया। उसमें और अमर बाबू की कन्या मृणालिनी में प्रेम हो चला था। अमर बाबू भी हृदय से यही चाहते थे कि मदन और मृणाल का विवाह हो जाय किन्तु परिस्थितिवश मदन को उनका आश्रय छोड़ देना पड़ा। अमर बाबू का व्यापार मन्द पड़ गया। उधर

मदन मोतियों का व्यापार करके शीघ्र ही बड़ा आदमी बन गया। वह स्मृति में घूमती मृणाल को विस्मृत करना चाहता था। संयोगवश एक दिन उसने जल में डूबने से मृणाल को बचा लिया। अन्त में, अपनी समस्त सम्पत्ति मृणालिनी को देकर वह भारत लौट गया। कहानीकार ने 'मदन-मृणालिनी' में धर्म और प्रेम का द्वन्द्व-चित्रण किया है। द्वन्द्व का शमन होता है आत्म-त्याग से। कथाकार लिखता है—'प्रेम ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं है कि धर्म को हटाकर उसके स्थान पर आप बैठे। प्रेम महान है, प्रेम उदार है। प्रेमियों को भी वह उदार और महान् बनाता है। प्रेम का मुख्य अर्थ है—आत्म त्याग।' यह आत्म-त्याग मदन के चरित्र में द्रष्टव्य है। इस कहानी के कथानक की कड़ियाँ विशृंखल हैं। विकास-योजना असफल है और संगठित प्रभाव में बाधक। कथा के आरम्भ, विकास और अन्त में व्यवस्था नहीं है।

यथार्थोन्मुख कहानी 'ग्राम' को अलग कर देने पर 'छाया' में दो प्रकार की कहानियाँ मिलती हैं—

(१) ऐतिहासिक

(२) प्रेममूलक

ऐतिहासिक कथाओं में 'तानसेन' प्रेम-कथा है, अन्य ऐतिहासिक तथ्य और किंवदन्तियों पर आधारित हैं। प्रसाद की विधायिनी-कल्पना का प्रारम्भिक रूप इन कहानियों में प्राप्य है। प्रेम-कथाओं में एकान्तिक प्रेम साधना प्रबल है। 'मदन-मृणालिनी' में अवश्य प्रेम समाज और परिस्थितियों से प्रभावित है। इसीलिए उसमें 'छाया' की अन्य प्रेम-कहानियों की भाँति भावातिरेक नहीं है।

इन कहानियों के कथानक-निर्माण में त्रुटियाँ हैं। कथा-तत्व नगण्य है। प्रसाद की स्वच्छन्दवादी प्रतिभा सुगठित कथानक-योजना में सहायक नहीं होती। कथाकार कुछ स्थितियाँ चुन लेने के लिए स्वतन्त्र है किन्तु उनमें परस्पर सम्बन्ध-निर्वाह भी आवश्यक है। इस दृष्टि से प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियाँ ही नहीं, कुछ प्रौढ़ कहानियों की कला भी कमजोर हो गई है।

'छाया' की कहानियों के पात्रों के चरित्र-चित्रण का प्रयत्न भी प्रारम्भिक-अवस्था का है। कहानियों में चरित्र के पक्ष-विशेष की झलक दिखाना अभीष्ट होता है। 'छाया' की प्रेममूलक कहानियों की अपेक्षा ऐतिहासिक कहानियों मे चरित्र-चित्रण का प्रयत्न सफल है। कथोपकथन का प्रयोग समुचित नहीं है, पर कुछ स्थलों पर प्रभावसृष्टि में सहायक हुआ है। इन कहानियों की भाषा में एक विशेषता है जो प्रसाद की परवर्ती कहानियों में अनुपलब्ध है। इसमें पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग है। मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू-फारसी शब्द बड़ी उदारता से प्रयुक्त हुए हैं। परवर्ती रचनाओं में प्रसाद की भाषाविषयक रूढ़िवादिता ने अधिकार जमा लिया।

'छाया' की कहानियों में प्रसाद की स्वतन्त्र कहानी-कला के विकास का परिचय प्राप्त होता है। प्रसाद ने अपने लिए कहानी के आदर्श निश्चित किए और निर्माण-पथ निर्धारित किया। 'छाया' में इसका सूत्रपात्र होता है और परवर्ती साहित्य में विकास। प्रसाद की कवि-प्रतिभा और नाटकीय-प्रतिभा के संयोग से निर्मित कथा-साहित्य की सूचना 'छाया' में है। इसीलिए जहाँ 'रसिया बालम' ऐसी कहानियों में भावुकता है, वहीं 'गुलाम' और 'जहाँनारा' मे नाटकीयता है। कहानियों के कथोपकथन में भी प्रसाद की नाटकीय-प्रतिभा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

प्रतिध्वनि

'प्रतिध्वनि' (१६२६) में भी प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियाँ संगृहित हैं। ये कहानियाँ 'छाया' की कहानियों से भिन्न प्रकार की हैं—कहानी से अधिक गद्य-गीत हैं। 'प्रसाद' ऐसी ही कहानी है जिसमें कहानी-कला का अल्पांश भी नहीं है। छायावाद की प्रारम्भिक रचनाओं में जिस अस्पष्ट शैली का प्राधान्य होता है, उसका प्रभाव 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में लक्षित है। कहानीकार का मन्तव्य भी अस्पष्ट रह जाता है। लक्ष्य-सिद्धि शैली की बोझिलता से दब जाती है। फलस्वरूप रसानुभूति और प्रभावग्रहण में बाधा पड़ती है और कहानी स्थायी-प्रभाव नहीं छोड़ पाती। इस संग्रह की कुछ कहानियों में ये दोष अत्यधिक हैं। पर 'छाया'

की कहानियों की भाँति इनका भी प्रसादीय कथा-साहित्य के विकास अध्ययन में ऐतिहासिक महत्व है। प्रसाद की प्रतिभा जिस नूतन पथ का अन्वेषण कर रही थी उसका परिचय इनमें मिल जाता है। विषय और संस्कृतनिष्ठ अलंकृत शैली द्वारा प्रसाद कथा-साहित्य में नवीन युग का सूत्रपात कर रहे थे। प्रौढ़ कहानियों में प्रसाद की जिस अनूठी शैली और वातावरण-योजना का चरम-चमत्कार दृष्टिगत होता है, उसका आभास 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में मिलने लगता है। कथा-साहित्य में बहिर्जगत के अतिरिक्त अन्तर्जगत के प्रतिष्ठापन का महत्वपूर्ण प्रयोग भी इस संग्रह की कुछ कहानियों में है।

'प्रतिध्वनि' में प्रसाद की पन्द्रह कहानियाँ हैं—प्रसाद, गूदड़ साईं, गुदड़ी में लाल, अघोरी का मोह, पाप की पराजय, सहयोग, पत्थर की पुकार, उस पार का योगी, करुणा की विजय, खंडहर की लिपि, कलावती की शिक्षा, चक्रवर्ती का स्तंम्भ, दुखिया, प्रतिमा और प्रलय।

'प्रसाद' कहानी से अधिक गद्यगीत है जिसमें भावात्मकता और कल्पना की प्रधानता है। 'गूदड़ साईं' में प्लाट मुख्य नहीं, साईं की मनोवृत्ति मुख्य है। गूदड़ साईं नामक वैरागी को बच्चों से प्रेम है। वह मोहन से मिलता-जुलता है। मोहन के पिता यह पसन्द नहीं करते। उसका मोहन से मिलना-जुलना बन्द हो जाता है। एक दिन एक बालक गूदड़ साईं का गूदड़ छीन कर भागता है। साईं गूदड़ लेने के लिए उसके पीछे भागता है किन्तु ठोकर लगने से गिर जाता है। सिर से रक्त निकल आता है। मोहन के पिता खिझाने वाले लड़के को पीटने लगते हैं, पर साईं लड़के को बचाने लगता है—'मत मारो, मत मारो, चोट आती होगी।' साईं ने कहा और लड़के को छुड़ाने लगा। मोहन के पिता ने साईं से पूछा—तब चीथड़े के लिए दौड़ते क्यों थे?'

सिर फटने पर भी जिसको रुलाई नहीं आई थी, वही साईं लड़के को रोते देख कर रोने लगा। उसने कहा—'बाबा, मेरे पास दूसरी कौन वस्तु है, जिसे देकर इन 'रामरूप' भगवान् को प्रसन्न करता।'

'तो क्या तुम इसीलिए गूदड़ रखते हो ?'

'इस चीथड़े को लेकर भागते हैं भगवान् और मैं उनसे लड़ कर छीन लेता हूं, रखता हूं फिर उन्हीं से छिनवाने के लिए, उनके मनोविनोद के लिए। सोने का खिलौना तो उचक्के भी छीनते हैं, पर चीथड़ों पर भगवान् ही दया करते हैं।' इतना कहकर बालक का मुँह पोंछते हुए मित्र के समान गलबाँहीं डाले हुए साईं चला गया।'

कहानी के अन्त में यथेष्ट प्रभावात्मकता है। इसमें कथोपकथन का कलात्मक प्रयोग सहायक हुआ है। 'गूदड़ साईं' का रेखा-चित्र भी अच्छा बन पड़ा है।

'गुदड़ी में लाल' नामक कहानी में कथानक कुछ भी नहीं है। इसमें एक बुढ़िया की स्वाभिमानी प्रकृति का चित्रण है। बुढ़िया शारीरिक अक्षमता के कारण काम करने में असमर्थ है किन्तु बिना काम किए वह किसी की सहायता नहीं ले सकती। उसका स्वाभिमान इसे भीख समझता है। उसे घर बैठे सहायता देने के लिए जब एक व्यक्ति प्रस्तुत होता है तब बुढ़िया सोचती है—'जीवन भर के संचित इस अभिमान-धन को एक मुट्ठी अन्न की भिक्षा पर बेच देना होगा!' यह विचार उसे असह्य है। स्वाभिमान उसका जीवन-आदर्श है जिसे खोकर वह जीवित नहीं रह सकती। उसकी लज्जा बनी रहती है—सहायता प्राप्त होने के पूर्व वह मर जाती है। इस कहानी में प्रसाद ने स्वाभिमान की महिमा गाई है। बुढ़िया की इस चारित्रिक विशेषता को प्रसाद ने गहरा रंग प्रदान किया है किन्तु उसकी अविश्वसनीय मृत्यु ने कथा की प्रभावात्मकता कम कर दी। बुढ़िया का अन्त कथाकार का आग्रह है, कथा का स्वाभाविक परिणाम नहीं।

'अघोरी का मोह' में भावातिरेक है। कथा-तत्व है किन्तु विकास व्यवस्थित नहीं है। कथा की प्रभावन्यूनता से कहानीकार की उद्देश्य प्रतिष्ठा में बाधा पड़ती है। भावुक प्रसाद कथा की कड़ियों को शृंखला नहीं प्रदान कर पाए हैं।

'पाप की पराजय' में मनोभाव परिवर्तन की कहानी है। इसमें आदर्श

की छाप स्पष्ट है। कथोपकथन का प्रयोग द्रष्टव्य है।

'अनबोला' की कथा इस प्रकार है—मोहन नामक एक हृदयहीन युवक ने मनोरमा से विवाह किया। पत्नी की 'स्वाभाविकता पर अपने आतंक से क्रूर शासन करके उसे आत्म-चिन्ताशून्य पतिगत प्राण बनाने की उत्कट अभिलाषा से हृदयहीन कल से चलती-फिरती हुई पुतली बना डाला और वह अपनी इसी में विजय और पौरुष की पराकाष्ठा समझने लगा था।' पर अपनी वेश्या प्रेयसी से तिरस्कृत हो वह मनोरमा की ओर झुकता है। मनोरमा अब यन्त्रचालित दासी की मनोभूमि में थी। उसकी हृदयगत भावनाएँ मर चुकी थीं और वह पति की आज्ञा की अनुचरी मात्र थी। अन्त में मोहन ने अपनी भूल स्वीकार की।

'पत्थर की पुकार' में कथा-तत्व नगण्य है। इसमें 'करुणा और अतीत' पर प्रसाद का दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। कथा-विकास की अपेक्षा गद्य काव्यात्मकता प्रधान है। 'करुणा की विजय' में प्रसाद ने दरिद्रता पर करुणा की विजय अंकित की है। कथा-तत्व इसमें अविकसित है। इस कहानी में प्रसाद कथाकार की अपेक्षा मतदाता बन गए हैं। कहानी कथाकार के मन्तव्य-प्रतिष्ठा का माध्यम बन गई है।

'उस पार का योगी' और 'खंडहर की लिपि' में भी कथानक नगण्य है। प्रथम कहानी में तो विषय अस्पष्ट रह जाता है। इसमें भावात्मकता इतनी अधिक है कि प्रभावात्मकता बिल्कुल नहीं रह जाती। कहानी का अन्त गद्यकाव्यात्मक प्रवृत्ति से अभिभूत है। 'खंडहर की लिपि' का नाटकीय अन्त प्रभावविशिष्ट है।

'कलावती की शिक्षा' में कहानी की दृष्टि से विशेष कुछ नहीं है। 'चक्रवर्ती का स्तम्भ' में ऐतिहासिकता है। इसे ऐतिहासिक कहानी कहा जा सकता है। इसमें अशोककालीन और मुसलमानी शासन-व्यवस्था की प्रवृत्तियों का निदर्शन है। पात्र प्रवृत्तियों के वाहक मात्र हैं। 'दुखिया' में कथानक की रूप-रेखा समुचित नहीं है। कथोपकथन का प्रयोग अच्छा हुआ है। 'प्रतिमा' के कथानक में व्यवस्था नहीं है। गद्यकाव्यात्मकता

अधिक है, प्रभावात्मकता कम। 'प्रलय' कथोपकथन और शैली-सौष्ठव की दृष्टि से अच्छी है। विषयाभिव्यक्ति में शैली अपूर्व बलवती है। प्रसाद की नाटकीय-प्रतिभा इस कहानी में सोलहों आने मँजी है। इसमें कथोपकथन, पात्र और वातावरण सब नाटकीय हैं। 'प्रलय' प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियों में है और हिन्दी की नाटकीय कहानियों में उल्लेख्य।

'प्रतिध्वनि' की कहानियाँ छोटी कहानियाँ हैं जिनमें कथा-तत्व सूक्ष्म है। भावुकता के अतिरेक एवं चिन्तन-विक्षेप के कारण विषय की अभिव्यक्ति अस्पष्ट रह जाती है और कहानियाँ गद्यकाव्यात्मक हो गई हैं। शैली में कवि-कल्पना का प्रधान्य है जिससे उसका रूप-सौष्ठव नहीं हो पाया है। इस संग्रह की कहानियों में प्रसाद का कवि प्रमुख है। पर कहानी-साहित्य में जिस दिशा-विशेष की ओर प्रसाद अग्रसर हो रहे थे, उसका परिचय इन कहानियों में मिल जाता है। यद्यपि 'प्रतिध्वनि' की रचनाएँ स्थायी-स्थान की अधिकारिणी नहीं हैं, तथापि हिन्दी-कहानी और प्रसाद की कहानियों के विकास-अध्ययन की दृष्टि से उनका उल्लेख आवश्यक है।

आकाशदीप

'आकाशदीप' (१९२९) प्रसाद की कहानियों का तीसरा संग्रह है। 'आकाशदीप' की कहानियों में प्रसाद की कहानी-कला का निश्चित विकास हुआ है किन्तु समुचित नहीं। इस संग्रह की कहानियाँ 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कहानियों से किसी भिन्न पथ पर नहीं चली हैं। वस्तुतः इस संग्रह की कहानियाँ 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कहानियों के प्रभाव को स्पष्ट सूचित करती हैं। कुछ कहानियाँ—विशेष रूप से ऐतिहासिक—'छाया' की शैली का अनुसरण करती हैं। अन्य कहानियों का विकास 'प्रतिध्वनि' की शैली से प्रभावित है। इस संग्रह की कहानियाँ प्रसाद की कहानी-कला के विकास की प्रगति के साथ ही कहानियों में स्थायी प्रभाव-क्षमता उत्पन्न करती हैं। इनमें कला-प्रौढ़त्व के दर्शन होने लगते हैं यद्यपि उसमें परिपूर्णता नहीं आई है। यह कहा जा सकता है कि 'आकाशदीप'

'छाया-प्रतिध्वनि' की अप्रौढ़ कहानियों और 'आँधी-इन्द्रजाल' की प्रौढ़ कहानियों के बीच की कड़ी है।

'आकाशदीप' में संगृहित उन्नीस कहानियाँ इस क्रम से हैं—आकाशदीप, ममता, स्वर्ग के खंडहर में, सुनहला साँप, हिमालय का पथिक, भिखारिन, प्रतिध्वनि, कला, देवदासी, समुद्र संतरण, वैरागी, बनजारा, चूड़ीवाली, अपराधी, प्रणय-चिन्ह, रूप की छाया, ज्योतिष्मती, रमला और बिसाती।

'आकाशदीप' ऐतिहासिक तथ्य पर निर्मित नहीं है और न इसके पात्र ही ऐतिहासिक हैं। इसकी ऐतिहासिकता वातावरण-योजना में है। इस कहानी का सौंदर्य ऐतिहासिक-वातावरण की पृष्ठभूमि पर चित्रित अन्तर्द्वन्द्व योजना में है। इस अन्तर्द्वन्द्व को समझने के लिए 'आकाशदीप' की कथा का परिचय आवश्यक है। संक्षेप में—वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने चम्पा नगरी की क्षत्रिय बालिका चम्पा को अपने पोत में बन्दी कर रखा था। चम्पा का पिता मणिभद्र का प्रहरी था। दस्युओं के आक्रमण में वह मारा गया। निराश्रित चम्पा से मणिभद्र ने घृणित प्रस्ताव किया। चम्पा ने विरोध किया। मणिभद्र ने उसे बन्दी कर दिया। उसी पोत में दस्युदलपति युवक बुद्धगुप्त भी बन्दी किया गया था। आँधी के भयंकर आवरण में चम्पा की सहायता से वह मुक्त हुआ। दोनों चम्पा द्वीप में रहने लगे। दस्यु के हृदय में चम्पा के प्रति कोमल भाव है, चम्पा भी उससे प्रेम करती है। पाँच वर्षों में बुद्धगुप्त ने जलमार्ग के वाणिज्य पर पूरा अधिकार कर लिया किन्तु चम्पाविहीन उसका समस्त ऐश्वर्य व्यर्थ था। चम्पा उससे प्रेम करती है पर वह यह समझती थी कि उसके पिता की मृत्यु का कारण बुद्धगुप्त है। पिता के हत्यारे प्रेमी के प्रति समर्पण कैसे करे? यह अन्तर्द्वन्द्व हृदय की व्यथा को और भी बढ़ाता था। बुद्धगुप्त से उसने अपनी मनोव्यथा इन शब्दों में प्रकट की थी—'विश्वास, कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूं! मैं तुम्हें घृणा करती हूं; फिर

भी तुम्हारे लिए मर सकती हूं। अन्धेर है जलदस्यु! तुम्हें प्यार करती हूं।'

× × × ×

बुद्धगुप्त ने कहा—'मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूं चम्पा। वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।'

'यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान होते!'

इस अन्तर्द्वन्द्व ने उसके हृदय में आशा-आकाँक्षा के स्थान पर अवसाद भर दिया था। जो चाहती है वह प्राप्य है, फिर भी हाथ बढ़ा कर ले नहीं सकती—चम्पा की इस विवशता ने उसके चरित्र को कारुणिक बना दिया है। निराश बुद्धगुप्त भारत लौट गया। मर्मव्यथा की तीव्र ज्वाला में जलती चम्पा उस द्वीप में आकाशदीप जलाती रही। एक दिन न चम्पा रही और न दीप-स्तम्भ। काल के कठोर हाथों ने दोनों को नष्ट कर दिया।

इस कहानी का प्रारम्भ, विकास और अन्त प्रभावात्मक है। कथोपकथन का प्रयोग कहानी में नाटकीयता लाने के साथ कथा-विकास में भी सहायक है। कथानक रोचक है और ऐतिहासिक-वातावरण की योजना सफल। शैली में काव्यमय सौंदर्य और अनुभूतितीव्रता है। चम्पा का चरित्रगत द्वन्द्व-चित्रण कथाकार सफलतापूर्वक करता है। प्रेम और घृणा के द्वन्द्व में चम्पा की यथार्थ मनोवृत्ति बार-बार झलक दिखाकर उसकी मनोगत भावना को स्पष्ट कर जाती है।

'ममता' में भी ऐतिहासिक-वातावरण की सफल योजना है। प्रसाद की विधायक-कल्पना 'ममता' के रूप में एक विशिष्ट पात्री की सृष्टि करती है। उसकी जीवनव्यापी करुणा में उदासीनता, कर्त्तव्य और स्वाभिमान अन्तर्भुक्त है। वैधव्य से सन्तप्त सम्पन्न हिन्दू विधवा की दयनीय दशा इन शब्दों में कथाकार ने व्यक्त की है—'मन में, वेदना; मस्तक में

आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिये वह सुख के कंटकशयन में विकल थी।' ममता के प्रारम्भिक वर्णन से कथा-विकास का प्रायः सम्बन्ध नहीं है किन्तु प्रसाद की भावुकता नारी के करुण रूप-चित्रण में विशेष रमती है। लक्ष्य के लिए कहानीकार जिन उपकरणों से सहायता लेता है, वे भी विश्रृंखल से हैं। इसीलिए कहानी में सन्तुलित प्रभाव अनुपलब्ध है।

'स्वर्ग के खंडहर में' प्रसाद की भाव-प्रवणता और कल्पना के अनेक रंगों की योजना करती है। कथा-विकास की श्रृंखलाएँ परस्पर सम्बद्ध नहीं हो पायी हैं। इस कहानी में प्रसाद की स्वच्छन्दवादी प्रतिभा कवित्व-पूर्ण वातावरण सृष्टि में संलग्न है। कहानी को ऐतिहासिक-स्पर्श प्राप्त है। वस्तुतः इस कहानी की मूलवृत्ति 'प्रतिध्वनि' की कथा-शैली का अनुसरण करती है जिसमें कथा से अधिक काल्पनिक अनुभूति है। 'सुनहला साँप' और 'हिमालय का पथिक' में कथानक नगण्य है, लक्ष्यप्राप्ति मुख्य। 'हिमालय का पथिक' में अधिकाँश वस्तु कथोपकथन द्वारा विकास प्राप्त करती है। इसीलिए इसमें नाटकीयता है।

'भिखारिन' की कथा इस प्रकार है—निर्मल माँ के साथ गंगा स्नान को जाता है। वहाँ किशोरवयस्का भिखारिन उससे भीख माँगती है। भावुकतावश वह माँ से लड़ बैठता है और भिखारिणी को कुछ भी नहीं मिलता। पुनः निर्मल भाभी के साथ स्नान करने आया। भिखारिणी ने भीख माँगी। निर्मल और भिखारिणी को लेकर भाभी ने व्यंग्य कर दिया। 'युवक-हृदय उत्तेजित हो उठा। बोला—'यह क्या भाभी? मैं तो इससे विवाह करने के लिए भी प्रस्तुत हो जाऊँगा! तुम व्यंग्य क्यों कर रही हो?

भाभी अप्रतिभ हो गई। परन्तु भिखारिन अपने स्वाभाविक भोलेपन से बोली—'दो दिन माँगने पर भी तुम लोगों से एक पैसा तो देते नहीं बना, फिर गाली क्यों देते हो बाबू? ब्याह करके निभाना तो बहुत दूर की बात है।' भिखारिन भारी मुँह किए लौट चली। इस कहानी का प्रारम्भ और विकास साधारण है किन्तु चरम-सीमा प्रभावात्मक है।

भिखारिन के सामान्य शब्दों की मार्मिकता का अमिट प्रभाव कहानी का अन्त कलात्मक बना देता है। 'प्रतिध्वनि' वर्णन और विषय की दृष्टि से 'भिखारिन' की परम्परा में है। इसमें प्रसाद की भावात्मक शैली यथेष्ट संयत हो उठी है। बीज, विकास और फलागम की स्थितियाँ भी उपलब्ध हैं। इसीलिए कहानी का लक्ष्य-संधान भलीभाँति हो पाया है।

'कला' प्रतीकात्मक कहानी है! तीन पात्र हैं—कला, रूपनाथ और रसदेव। पात्रों का अस्तित्व प्रयोजन के आधीन है। इसमें प्रसाद ने रूप पर रस की विजय अंकित की है। कहानी-कला की रक्षा करते हुए कहानीकार ने बड़ी कुशलता से उद्देश्यप्रतिष्ठा की है।

'देवदासी' पत्र-शैली में लिखी एक दुखान्त प्रेम-कथा है। पत्र-शैली में यह प्रसाद की एक मात्र कहानी है। प्रयोग की दृष्टि से लिखी इस कहानी में प्रसाद को विशेष सफलता नहीं मिली है। कथानक की शृंखलाएँ सम्बद्ध नहीं हैं—पत्र-शैली के कारण। इसीलिए इस शैली में पुनः प्रसाद ने कोई कहानी नहीं लिखी।

'समुद्र सन्तरण' भावप्रधान कहानी है जिसमें एक राजकुमार और धीवर बाला की प्रेम-कथा का सुखान्त चित्रण है। इसमें प्रसाद की स्वच्छन्दवादी-प्रतिभा को विकास का पूरा अवसर मिला है। कथाकार लक्ष्यप्राप्ति के निमित्त नाटकीय परिस्थितियों की सृष्टि करता है। कथोपकथन का नाटकीय प्रयोग भी द्रष्टव्य है। भावात्मक-वातावरण सम्पूर्ण कथा में परिव्याप्त है।

'वैरागी' 'प्रतिध्वनि' की कथा-परम्परा में है। राग और विराग का द्वन्द्व-चित्रण पूर्ण सफल नहीं है। इस लघुकाय कथा में उनके आकर्षण-विकर्षण की झलक मात्र है। समस्या है कि विराग राग का पूर्ण प्रत्याख्यान कर सका कि नहीं? विराग राग से भयभीत होकर भागता है—तब विराग राग शून्य था, ऐसा मानना कहाँ तक समीचीन होगा? कदाचित् नहीं।

'बनजारा' में कथानक नगण्य है; लक्ष्य अस्पष्ट। अतिभावुकता

अस्पष्टता में वृद्धि करती है। अन्त प्रभावशून्य है। वस्तुतः इस कहानी में विशेष कुछ नहीं है।

'चूड़ीवाली' सुखान्त प्रेम-कथा है। चूड़ीवाली विलासिनी वेश्यापुत्री है किन्तु उसकी मनोवृत्ति अपने व्यवसाय के प्रतिकूल है। कुलवधू बनने की अभिलाषा हृदय में और दाम्पत्य सुख का स्वर्गीय-स्वप्न उसकी आँखों में समाया था। इन्हीं दिनों बाबू विजयकृष्ण पर वह मोहित हो गई और उनकी पत्नी को चूड़ी पहनाने के बहाने उनके घर आने-जाने लगी। विलासिनी के कलापूर्ण सौंदर्य ने विजयकृष्ण पर प्रभाव डाला। वह प्रकाश्य रूप से उसके घर जाने लगे। इससे उनकी पत्नी मनोवेदना की चोट न सँभाल सकी। वह राजयक्ष्मा में मर गई। उधर एक बड़े मुकदमे में विजयकृष्ण का सर्वस्वान्त हुआ। उनके लिए केवल चूड़ीवाली का आश्रय अवशेष था। पर जिसे वह वेश्या समझते थे, उसके द्रव्य से पेट पालने में असमर्थ थे। विलासिनी के विनय और अनुरोध का प्रत्याख्यान कर विजयकृष्ण चले गए। विलासिनी का कुलवधू बनने का स्वप्न भंग हो गया। उसने जीवनचर्या बदल डाली। वह आदर्श हिन्दू-गृहस्थ की भाँति त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करने लगी। पथिकों की सेवा और भिखारियों को अन्नदान द्वारा तुष्ट करती। एक दिन उसके गाँव में जीर्ण-शीर्ण दशा में विजयकृष्ण आए। चूड़ीवाली का त्याग-सेवामय जीवन देखकर उनके नेत्र खुल गए। उसके विषय में उनकी धारणा भी बदली। विजयकृष्ण ने उसे कुलवधू होने के उपयुक्त पाया और विलासिनी की आकांक्षा पूर्ण हुई।

कथा-सन्तुलन के निर्वाह की दृष्टि से यह कहानी 'आकाशदीप' की श्रेष्ठ कहानियों में से है। बीज, विकास और फलागम की क्रम-व्यवस्था 'चूड़ी वाली' का कलात्मक मूल्य बढ़ा देती है। कथोपकथन का प्रयोग भी स्तुत्य है किन्तु मुख्य है चूड़ीवाली विलासिनी का चरित्रांकन। वह वेश्यापुत्री होकर भी कुलवधू का जीवन व्यतीत करना चाहती है। अपनी साधना से सफल भी होती है। उसने विजयकृष्ण से कहा था—'परन्तु

वेश्या का व्यवसाय करके भी मैंने केवल एक ही व्यक्ति से प्रेम किया था। मैं और धर्म नहीं जानती पर अपने सरकार से जो कुछ मुझे मिला, उसे मैं लोक-सेवा में लगाती हूं।' वेश्यापुत्री होकर भी आदर्श के प्रति निष्ठा उसके चरित्र-उत्कर्ष का आधार है।

'अपराधी' प्रभाव और वातावरण की दृष्टि से उल्लेखनीय है। वनपालिका के हृदय की समस्त वेदना कथा के अन्तिम शब्द 'अपराधी' में अदृष्टपूर्व मार्मिकता से व्यक्त हुई है। समस्त कहानी एक निस्सीम करुणा से परिव्याप्त हो जाती है। इसमें जीवन की दुखान्त अनुभूति साकार हो उठी है। कथाकार को लक्ष्यसिद्धि में अच्छी सफलता मिली है। कहानी का अन्त मानस-पटल पर गहरा चिन्ह छोड़ जाता है। कुछ स्थलों पर कथोपकथन का साभिप्राय प्रयोग छाया-विवृति की योजना करता है।

'प्रणय चिन्ह' में भावात्मक वातावरण की पृष्ठभूमि पर प्रेम-कथा वर्णित है। यह 'प्रतिध्वनि' की कथा-परम्परा में है। इसका प्रारम्भ तो निश्चय ही गद्यकाव्यात्मक है। कथानक सूक्ष्म है और कथोपकथन प्रसाद की नाटकीय प्रतिभा के अनुकूल हैं। 'रूप की छाया' लघुकाय कहानी है जो प्राणी के अन्तर्मन से सम्बन्ध रखती है। 'ज्योतिष्मती' प्रतीकात्मक कहानी है। 'रमला' में रहस्य-भावना है।

'विसाती' एक प्रेम-कथा है। शीरी का प्रेमी युवक विसाती विदेश चला गया। उधर शीरी का विवाह एक धनी सरदार से कर दिया गया। अनेक दिनों वाद युवक लौट कर आया। सरदार अपनी प्रेयसी को उपहार देने के लिए वस्तु-क्रय करना चाहता था किन्तु युवक ने कहा—'मैं उपहार देता हूं, वेचता नहीं। इनमें मूल्य ही नहीं, हृदय भी लगा है। ये दाम पर नहीं विकते।' सरदार ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—'तब मुझे न चाहिये। ले जाओ, उठाओ।'

'अच्छा उठा ले जाऊँगा। मैं थका हुआ आ रहा हूं, थोड़ा अवसर दीजिए मैं हाथ-मुँह धो लूँ—कह कर युवक भरभराई हुई आँखों को

छिपाते उठ गया।

सरदार ने समझा मरने को ओर गया होगा। विलम्ब हुआ पर वह न आया। गहरी चोट और निर्मम व्यथा को वहन करते, कलेजा हाथ में पकड़े हुए, शीरी गुलाब की झाड़ियों की ओर देखने लगी। परन्तु उसको आँसू भरी आँखों को कुछ न सूझता था। सरदार ने प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ रख कर पूछा—'क्या देख रही हो?'

'एक मेरा पालतू बुलबुल शीत में हिन्दोस्तान की ओर चला गया था। वह लौटकर आज सवेरे दिखलाई पड़ा पर जब वह पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा तो वह उधर कोहकाफ की ओर भाग गया।' शीरी के स्वर में कम्पन था फिर भी वे शब्द बहुत सम्हल कर निकले थे। सरदार ने हँस कर कहा—'फूल को बुलबुल की खोज? आश्चर्य है।'

बिसाती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौट कर नहीं आया। शीरी ने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।

इस दुखान्त प्रेमकथा में प्रसाद की अनुभूति हृदय की गहराइयों का स्पर्श करती है। कहानी का अन्त अत्यधिक मार्मिक है। 'बिसाती' में एक साधारण प्रेमकथा को असाधारण प्रभावसम्पन्न बनाने की प्रसादीय क्षमता के दर्शन होते हैं। कथाकार की भावुकता एवं काव्यमय-कल्पना इसमें सहायक होती है।

'आकाशदीप' में प्रसाद की भावात्मक कथा-शैली का विकास हुआ है और कहानियों को अधिकाधिक प्रभावसम्पन्न बनाने का प्रयत्न भी लक्षित होता है। इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'आकाशदीप' है। 'चूड़ी वाली' 'बिसाती' आदि कुछ प्रेमकथाएँ भी अच्छी कहानियों में गण्य हैं। प्रसाद बीज, विकास और फलागम के कलात्मक निर्वाह के प्रति सचेष्ट हैं किन्तु सर्वत्र सफलता नहीं मिली है। उनकी स्वच्छन्दवादिता कथा-सन्तुलन में बाधक हो उठती है। किन्तु 'आकाशदीप' की कहानियाँ कला और कृतित्व के विकास की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं और प्रसाद के व्यक्तित्व की अमिट छाप लिए हैं।

आँधी

'आँधी' (१९३१) प्रसाद की कहानियों का चतुर्थ संग्रह है। संग्रह के पूर्व ये कहानियाँ यत्र-तत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुकी थीं। 'आँधी' के साथ उन्हें संगृहित कर दिया गया। इन कहानियों में प्रसाद की रोमान्टिक कथा-प्रवृत्ति को पूर्ण प्रौढ़त्व प्राप्त हुआ है। 'आँधी' कहानी प्रसाद की कहानी-कला की प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है। कहानियों में बीज, विकास और फलागम का कलात्मक निर्वाह है।

इस संग्रह की ग्यारह कहानियों का क्रम इस प्रकार है—आँधी, मधुआ, दासी, घीसू, बेड़ी, व्रतभंग, ग्रामगीत, विजया, अमिट स्मृति, नीरा और पुरस्कार।

'आँधी' एक दुखान्त प्रेमकथा है। कहानी इस प्रकार है—श्रीनाथ के मित्र रामेश्वर से एक जिप्सी लड़की लैला प्रेम करने लगी। रामेश्वर विवाहित गृहस्थ है; वह लैला से प्रेम नहीं कर सकता। वह पत्र द्वारा लैला को सूचित करता है कि वह उससे प्रेम करने की भूल न करे। लैला वह पत्र श्रीनाथ से पढ़वाती है और श्रीनाथ झूठ-मूठ कहता है—रामेश्वर लैला को प्यार करता है। लैला यह सुनकर हर्षातिरेक से आत्मविभोर हो जाती है। लैला के मन में प्रेम की आकाँक्षा जगा कर श्रीनाथ ने अपनी भूल समझी। उधर रामेश्वर श्रीनाथ के पास रहने आया। लैला की उपस्थिति में परिस्थिति जटिल हो उठी। श्रीनाथ ने अब और न छिपा कर लैला से स्पष्ट कह दिया कि रामेश्वर उससे प्रेम नहीं करता। लैला के हृदय में आँधी उठ खड़ी हुई। यह जानकर कि रामेश्वर श्रीनाथ के घर आया है, लैला ने उसे एक बार देखने की इच्छा प्रकट की। श्रीनाथ की अनुमति से वह रामेश्वर से मिली। रामेश्वर के मुख से प्रेम-अस्वीकृति सुनकर लैला मानसिक अँधड़ में फँस गई। रामेश्वर चला गया किन्तु श्रीनाथ लैला के प्रति सहानुभूति अनुभव करने लगा। पर श्रीनाथ लैला को पाने के लिए विकल नहीं था क्योंकि वह प्रेम का परिणाम देख चुका था—लैला ने जिसे चाहा उसे न पा सकी। प्रेम में असफल लैला आंतरिक

चोट से विक्षिप्त हो गई। श्रीनाथ के एकाकी जीवन में स्मृति छोड़ कर वह अनुभूतियों के बन्धन तोड़ गई।

'आँधी' बड़ी कहानी है किन्तु वस्तु का प्रसार इतना नहीं है जितना भावनाओं का। कथा-तत्व और विचार-तत्व में यथेष्ट 'डाइवरशन' है। प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी प्रतिमा की सौंदर्य-सृष्टि इस कहानी में आदि से अन्त तक अव्याहत है। बीज, विकास और फलागम का क्रम व्यवस्थित है। कथाकार ने लक्ष्यसिद्धि नैपुण्य द्वारा अमिट प्रभावसृष्टि की है। उसने लैला के चरित्र का बड़ी सहृदयता से चित्रण किया है। भावों की आँधी ने उसके हृदय-प्रदेश को क्षत-विक्षत कर दिया था। फिर भी आवेग उसके मन-संयम का बाँध नहीं तोड़ पाया। अन्त में, उसके हृदय की घनीभूत वेदना मृत्यु की कोड़ में शान्त हो गई।

'मधुआ' एक छोटी-सी कहानी है जिसमें एक निकम्मा शराबी एक शिशु के प्रेम से नया जीवन प्रारम्भ करता है। वह मधुआ की कष्ट-वेदना को देखकर उसे आश्रय देता है। निराश्रित लड़के की स्नेह-सहानुभूति उसे कर्म-पथ पर अग्रसर करती है। 'शराबी' एक मानवीय चरित्र है।

'दासी' मध्यकालीन ऐतिहासिक कहानी है। इसकी वस्तु में प्रसार नहीं है। कुछ चुने हुए स्थल लेकर कथानक की योजना की गई है, पर वस्तु की शृंखलाएँ परस्पर सम्बद्ध नहीं हैं। इसीलिए कथानक पुष्ट नहीं बन पड़ा। कहानी का वातावरण प्रभावसम्पन्न है। उसके पात्रों में फीरोजा की जीवनव्यापी करुणा पाठक की सहानुभूति जागृत करने में समर्थ होती है। इरावती के दुःखी जीवन का सुखान्त और फीरोजा के सुखी जीवन का दुखान्त 'दासी' का निर्माण-कौशल है।

'घीसू' को यथार्थोन्मुख कहानी कहा जा सकता है। 'घीसू' की कहानी इस प्रकार है—घीसू रेजगी और पैसे की थैली लेकर दशाश्वमेध पर बैठता। एक पैसा रुपया बट्टा लिया करता। उसे बारह-चौदह आने की बचत हो जाती। बिन्दो जब उसके यहाँ रेजगी लेने आ जाती, तब घीसू को बड़ा आनन्द होता। बिन्दो से बात करने में उसे बड़ी तृप्ति का अनु-

भव होता। बिन्दो को जो व्यक्ति रखे था, उसने निकाल दिया। घीसू को उसे अपने घर आश्रय देना पड़ा। घीसू की पैसों की दूकान से बिन्दो को नित्य चार आने मिलते। पैसों के साथ घीसू का शरीर भी क्षीण होने लगा। एक दिन बिन्दो को निराधार छोड़ वह चला गया। इस कहानी की शैली भी यथार्थोन्मुख है। प्रारम्भ, विकास और अन्त के कलात्मक निर्वाह का प्रयत्न भी परिलक्षित होता है।

'बेड़ी' भी यथार्थोन्मुख कहानी है। चार चित्र कहानी को पूरा करते हैं। इन चित्रों द्वारा क्रमिक रूप से कथाकार अपने मन्तव्य को स्पष्ट करता है। अन्त में यथेष्ट प्रभावात्मकता है। इस कहानी की शैली भी विषय के अनुरूप है। उसमें भावात्मकता से अधिक यथार्थवादी प्रभाव दृष्टिगत होता है।

'व्रतभंग' में व्यक्ति के अहंभाव का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर चित्रण किया गया है। कहानी प्रभावात्मक नहीं बन पड़ी। वस्तु में संगठन नहीं है और न पात्रों में व्यक्तित्व। वातावरण-योजना सफल है।

'ग्राम-गीत' 'विजया' और 'अमिट स्मृति' तीन छोटी कहानियाँ हैं। 'ग्राम गीत' अनुभूतिमय दुखान्त प्रेमकथा है। बीज, विकास और फलागम की दृष्टि से उल्लेख्य कहानी है। रोहिणी का प्रेम उन्माद की जिस दशा को प्राप्त करता है, वह अन्तर्व्यापी वेदना का बाह्य रूप है। उसका अन्त करुण है किन्तु 'अमिट स्मृति' की नायिका के जीवन का अन्तिम दृश्य उससे भी अधिक करुण है। दोनों कहानियों में वस्तु-संकोच है, दोनों ही दुखान्त हैं। फिर भी 'ग्राम-गीत' वातावरण की दृष्टि से अधिक सफल है। 'विजया' में कथा-विकास की स्थितियाँ अप्राप्य हैं। यह एक साधारण कहानी है।

'नीरा' अपेक्षाकृत बड़ी कहानी है। इसमें जीवन-तत्व प्रधान है। इसकी विचार-ग्रन्थियों में प्रसाद की बौद्धिकता और मननशीलता अनुस्यूत है। कथासार इस प्रकार है—देवनिवास अपने मित्र अमरनाथ के साथ घूमने निकलता है। देवनिवास की साइकिल से एक बुड्ढा लड़ गया

जिसे परिस्थितियों ने नास्तिक बना दिया था। देवनिवास की सहृदयता ने उसका खोया विश्वास पुनः लौटा दिया। बुड्ढा दरिद्रता और कष्टों से नास्तिक बन गया था, मानवोचित सहृदयता ने उसका उद्धार किया। इस कहानी के पात्र—बुड्ढा, नीरा, देवनिवास और अमरनाथ—समस्या के सूत्रधार हैं। कथाकार आस्तिकता और नास्तिकता की समस्या का समाधान विश्वासपूर्ण सहृदयता से करता है। 'नीरा' में वस्तु से अधिक समस्या का प्रसार है।

'आँधी' की अन्तिम कहानी 'पुरस्कार' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से है। इस ऐतिहासिक कहानी का सम्पूर्ण आकर्षण मधूलिका के चरित्र में है। उसके चरित्र में प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व अंकित है। अरुण के प्रेम के वशीभूत हो वह राष्ट्रद्रोह करती है; कर्त्तव्य के वशीभूत हो वह अरुण को बन्दी कराती है। उसका प्रेम कर्त्तव्यपूर्ति में बाधक नहीं है। अपने दायित्व की समाप्ति पर वह पुनः अरुण के साथ है। मधूलिका के चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व प्रसाद ने भलीभाँति अंकित किया है। 'पुरस्कार' का लेखक मानसिक घात-प्रतिघात का चित्र-चित्रण अपूर्व अन्तर्दृष्टि से करता है। इस कहानी में वातावरण-चित्रण प्रथम श्रेणी का है और अन्त नाटकीय प्रभाव से पूर्ण। बीज, विकास और फलागम की दृष्टि से भी यह कहानी सफल है।

'आँधी' में तीन प्रकार की कहानियाँ हैं—

(१) प्रेममूलक
(२) ऐतिहासिक
(३) यथार्थोन्मुख

प्रेमकथाएँ प्रायः सब दुखांत हैं। ऐतिहासिक कहानियों में प्रसाद की विधायक कल्पना ने अपूर्व वातावरण सृष्टि की है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण उल्लेख्य है। यथार्थोन्मुख कहानियों में विषय के अनुरूप शैली ध्यान आकृष्ट करती है। 'नीरा' को समस्यामूलक कहानी कहना संगत होगा। इसमें वस्तु, पात्र और कथोपकथन

समस्या-चित्रण के साधन हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि 'आँधी' की कहानियों में प्रसाद की विविधरूपसम्पन्न सृजन-शक्ति का विकास हुआ है।

इन्द्रजाल

'इन्द्रजाल' (१६३६) प्रसाद की कहानियों का पाचवाँ और अन्तिम संग्रह है। इसमें संगृहित चौदह कहानियाँ विषय, भाव, भाषा, और शैली की दृष्टि से प्रौढ़ रचनाएँ हैं। प्रसाद की कथा-प्रवृत्ति और संविधान का समन्वय 'इन्द्रजाल' की कहानियों में दृष्टव्य है।

इस संग्रह में कहानियों का क्रम इस प्रकार है—इन्द्रजाल, सलीम, छोटा जादूगर, नूरी, परिवर्तन, सन्देह, भीख में, चित्रवाले पत्थर, चित्र मन्दिर, गुंडा, अनबोला, देवरथ, विराम चिन्ह और सालवती।

'इन्द्रजाल' एक प्रेमकथा है। कंजरों के एक दल में गाने वाली लड़की बेला और बाँसुरी बजाने वाले युवक गोली में प्रेम था। पर दलपति मैकू की आज्ञा से बेला का विवाह भूरे से हुआ। बेला को सिर झुका कर मैकू की आज्ञा का पालन करना पड़ा किन्तु वह हृदय से गोली को चाहती थी। उसके सौंदर्य से आधा गाँव पागल था। ठाकुर साहब की दृष्टि भी उस पर पड़ी। मैकू एक घाघ था। उसने हजार रुपये लेकर बेला को ठाकुर के हवाले कर दिया। भूरे से बेला को घृणा थी, ठाकुर के आश्रय में उससे निस्तार पाया। उधर मैकू ने भूरे को समझा-बुझा दिया। बेला ठाकुर की हवेली में रहने लगी। एक दिन गोली नटों का खेल दिखाता हुआ उधर आया और ठाकुर की आँख में धूल झोंक कर बेला को हवेली से निकाल ले गया।

इस कहानी में रसात्मकता के साथ रोचकता भी है। अन्तिम पृष्ठों में 'इन्द्रजाल' यथेष्ट रोचक हो उठी है। कथोपकथन का प्रयोग सफलता-पूर्वक किया गया है।

'सलीम' में कथाकार पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत की पृष्ठभूमि पर व्यक्ति की अन्तर्वृत्तियों का चित्रण करता है। सलीम हिजरत करके भारत से

सीमाप्रांत में आया। वह कट्टर मुसलमान है। पश्चिमोत्तर प्रदेश के हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक सद्भाव देख कर जल उठता है। उसने कट्टर वजीरियों के द्वारा उस गाँव पर आक्रमण करा दिया जिसमें गुल-मुहम्मद खाँ और नन्दराम एक परिवार के सदस्यों की तरह रहते थे। युद्ध हुआ, वजीरियों को गाँववालों की सम्मिलित शक्ति के सामने मुँह की खानी पड़ी। नन्दराम की सुन्दर पत्नी प्रेमा को भगाने के प्रयत्न में सलीम का हाथ तोड़ दिया गया। फिर भी प्रेमा ने उसके प्रति जिस करुणा का परिचय दिया उससे सलीम की कट्टरता रो पड़ी। वह जब तक जीवित रहा, तब तक प्रेमा को लक्ष्य करके 'बुते काफिर' वाला गीत गाता रहा।

इसमें 'सलीम' का चरित्र प्रधान है। प्रसाद ने उसे एक मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। उसकी समस्त वृत्तियाँ वह मानवीय दृष्टि से देखते हैं। कथाकार ने लिखा है—'मनुष्यता का एक पक्ष वह भी है जहाँ वर्ण, धर्म और देश को भूल कर मनुष्य मनुष्य के लिए प्यार करता है।' सलीम के मन में 'भीतर कोमल भाव था, शायरों की प्रेम-कल्पना, चुटकी लेने लगी।' प्रेमा के प्रति उसका मनोभाव उसे जीवन के अन्त तक अनु-भूतिमय बनाए रहा।

'छोटा जादूगर' लघुकाय यथार्थोन्मुख कहानी है। 'छोटा जादूगर' की कर्तव्यबुद्धि और मातृप्रेम द्रष्टव्य है। बालक के चरित्रांकन में कहानी-कार को बड़ी सफलता मिली है। छोटा जादूगर की सम्पूर्ण मानसिक गठन कहानी के छः पृष्ठों में मूर्त हो उठी है। कथोपकथन का प्रयोग भी कला-त्मक है। कथाकार लक्ष्य की ओर क्रम से बढ़ता है, इसीलिए लक्ष्यप्राप्ति प्रभावात्मक है। यह प्रसाद की श्रेष्ठ कहानियों में रखी जा सकती है।

'नूरी' ऐतिहासिक कहानी है। याकूब के प्रति नूरी का प्रेम असा-धारण परिस्थितियों में उत्पन्न होता है। याकूब की उत्कट देशभक्ति उसे विद्रोही बना देती है। वह नूरी के साथ पकड़ा जाता है। अकबर उसे छोड़ देता है पर नूरी तहखाने में बन्दी होती है। अट्ठारह वर्ष बाद अकबर

की शक्ति के अवसान में सलीम ने अनेक बन्दियों को मुक्त किया। इनमें नूरी भी थी। मुक्त होने पर उसे काश्मीर के शाहजादे याकूब खाँ की स्मृति बेचैन करने लगी। कारागार की कठिनाइयों में यौवन मर चुका था, पर मर्मव्यापी स्मृतियाँ सजीव थीं। याकूब से जब नूरी की भेंट हुई, तब वह मरणोन्मुख था। नूरी की गोद में वह मर गया।

इस दुखान्त प्रेमकथा में यथेष्ट प्रभावात्मकता है। मध्यकालीन ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर नूरी की जीवनव्यापी वेदना करुणा का सृजन करती है। याकूब के हृदय में प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व है। कर्त्तव्यप्रेरित याकूब नूरी के प्रेम की अवहेलना करता है और जीवन के सुन्दरतम् क्षण वन्दीगृह के अन्दर काटता है। कहानी नाटकीय प्रभाव और कथोपकथन के प्रयोग से रोचक बन पड़ी है। 'नूरी' के प्रेम का बीज प्रतिकूल परिस्थितियों में जमता है जिसका फल दुखान्त है।

'परिवर्तन' में कृत्रिम मनुष्य-जीवन की अभिशप्त जीवन-यात्रा के परिवर्तन की कथा है। 'सन्देह' में प्रभावक्षमता नहीं है। 'भीख में' कहानी अपेक्षाकृत प्रभावक्षम्य है। कहानी का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—मालो नामक युवती से ब्रजराज कभी-कभी चुहल कर लेता था। ब्रजराज की पत्नी के मन में सन्देह उत्पन्न होता है। पत्नी के व्यवहार से क्षुब्ध होकर ब्रजराज घर छोड़ कर चला जाता है। अनेक दिन बाद मालो अपने पति के साथ उससे मिलती है। तब परिस्थितियोंवश ब्रजराज भीख माँगने लगा था। मालो के पति ने ब्रजराज पर मालो को छेड़ने का सन्देह किया। पंडे की सहायता से उसने ब्रजराज को भीख माँगने के स्थान से धक्के देकर भगा दिया। भीख में भी ब्रजराज को दुर्भाग्य ही मिला। कहानी साधारण है किन्तु अन्त प्रभविष्णु है।

'चित्रवाले पत्थर' एक दुखांत प्रेमकथा है। भावुक प्रेमी के एकान्त जीवन की निष्फलता बड़े अनुभूतिमय ढँग से चित्रित की गई है। भावातिरेक जिस असाधारण वातावरण की सृष्टि करता है उसमें कल्पना का आधिक्य है।

'चित्र मन्दिर' प्रागैतिहासिक कहानी है। इसके वातावरण-निर्माण में प्रसाद को विशेष सफलता मिली है। आदि मानव के भाव-विकास का चित्रण अच्छा बन पड़ा है। कोमल और कठोर भावों के लिए नारी और पुरुष का निर्वाचन ठीक रहा है। पर प्रसाद जब कल्पना की लोकातीत सृष्टि द्वारा अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हैं, तब कहानी-कला का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

'गुंडा' चरित्र-प्रधान ऐतिहासिक कहानी है। प्रसाद ने विशद रूप से उन परिस्थितियों का वर्णन किया है जो इस कहानी की पृष्ठभूमि के निर्माण में सहायक हैं—'ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में.............समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्रबल के सामने झुकते देखकर, काशी के विच्छिन्न और निराश नागरिक जीवन ने एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि की। वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मिटना, सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण भिक्षा माँगने वाले कायरों तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठाना, सताये हुए निर्बलों को सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिये घूमना उसका बाना था। उन्हें लोग काशी में गुंडा कहते थे।' कथा-नायक नन्हकूसिंह का चरित्र-चित्रण करते हुए प्रसाद ने लिखा है—'जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वंचित होकर जैसे प्रायः लोग विरक्त हो जाते हैं; ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी, नन्हकूसिंह गुंडा हो गया था।' पन्ना रानी के प्रति उसके हृदय की रागवृत्ति वर्षों के साहसिक जीवन के उपरांत भी पूर्ववत् थी। पन्ना को बलवन्तसिंह ने उससे छीन लिया था। परन्तु नन्हकूसिंह का प्रेम परिस्थितियों की प्रतिकूलता में भी जीवित रहा। पन्ना के परिवार की रक्षा के लिये वह प्राण उत्सर्ग कर देता है। वस्तुतः उसकी प्रकृति मध्यकालीन 'नाइट्स' से मिलती है जिनके चरित्र में प्रेमतत्व और वीरत्व का समन्वय रहता था।

'गुंडा' नन्हकूसिंह प्रभावविशिष्ट चरित्र है। इस कहानी में कथा-

तत्व का प्रसार भी है। घटनाओं में गति है और चरमसीमा का प्रभाव अमित है। कथोपकथन की स्वाभाविकता शैली की अकृत्रिमता के कारण और भी बढ़ गई है। यथार्थोन्मुख शैली कहानी के स्थायी प्रभाव में सहायक है। 'गुंडा' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में परिगणित है।

'अनबोला' साधारण है, पर ऐतिहासिक कहानी 'देवरथ' में सुजाता भिक्षुणी की मनोव्यथा कारुणिक-वातावरण की अपूर्वता से चमत्कृत कर देती है। उसका चरित्र मानवीय करुणा को जागृत करने की बड़ी क्षमता रखता है। उसकी वेदना रजनी से भी काली है और दुःख समुद्र से भी विस्तृत है। बौद्धों के भ्रष्ट धर्माचरण की दुःस्सह छाया को छोड़कर वह आर्यमित्र के साथ जाना चाहती है, पर विलम्ब बाधक होता है। उसके जीवन की यंत्रणा देवरथ के पहिये के नीचे शांत हो जाती है। प्रसाद इसमें कहानी से अधिक कुछ कहते हैं—वह उस विचार-धारा का प्रत्याख्यान करते हैं जो जीवन को क्षणभंगुर सिद्ध करती है। प्रसाद ने प्रौढ़-काल में बौद्धधर्म की अनात्मवादी चिन्ताधारा के विरुद्ध अपने साहित्य में अनेक स्थलों पर लिखा है। 'देवरथ' में भी प्रसाद लिखते हैं—'जीवन सत्य है, संवेदन सत्य है। आत्मा के आलोक में अन्धकार कुछ नहीं है।' इस कहानी में विचार-प्रौढ़त्व के साथ शैली-प्रौढ़त्व और नाटकीय अन्त का दुर्निवार प्रभाव उल्लेखनीय है।

'विराम चिन्ह' विषय और शैली की दृष्टि से यथार्थोन्मुख कहानी है। कथोपकथन का स्वाभाविक प्रयोग कथा-सौंदर्य में अभिवृद्धि करता है। बुढ़िया का पुत्र-स्नेह जिस मानसिक-विद्रोह की सृष्टि करता है वह क्षणस्थायी है, चिरस्थायी है उसका विश्वास जो मन्दिर प्रवेशार्थी अन्त्यजों के सामने विराम-चिन्ह बन जाता है। इस छोटी कहानी के लक्ष्यसंधान में लेखक को अच्छी सफलता मिली है।

'सालवती' ऐतिहासिक कहानी है जिसमें एक पूरे काल की बहुमुखी प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है। कहानी का संक्षिप्त परिचय—हिरण्यगर्भ के उपासक आर्य धवलयश की दुहिता सालवती वज्जिसंघ द्वारा वसन्तोत्सव

की अनंगपूजा के लिये सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी चुनी गई। चुनाव होने पर उपराजा अभयकुमार ने उससे पाणिपीड़न की प्रार्थना की। किन्तु अभय के प्रतिद्वन्द्वी सेनापति मणिधर के प्रस्ताव को मतबाहुल्य के कारण राजस्वीकृति मिली। उसके अनुसार सालवती कुलवधू न बन कर नगरवधू बन गई। उसकी इच्छा पर एक रात्रि की दक्षिणा सौ स्वर्णमुद्राएँ नियत हुईं। सालवती का मान खण्डित हुआ किन्तु उसने नियति-निर्दिष्ट पथ पर चलना स्वीकार किया। वह मणिधर की प्रेयसी बनी। मणिधर युद्ध में मारा गया और गणराज्य की पराजय हुई। जनता ने कहा—'सालवती के संसर्ग-दोष से सेनापति मणिधर की पराजय हुई।' सालवती को नारी-समाज ने, वेश्यावृत्ति के पाप का आविष्कार करने वाली समझ कर तिरस्कृत किया। सालवती ने इस प्रथा के अन्त द्वारा प्रायश्चित्त का निश्चय किया। वज्जिसंघ में उसके प्रयत्न से ही वेश्यावृत्ति बन्द हुई। अन्य वेश्याओं को कुलपुत्रों ने और सालवती को अभयकुमार ने पत्नी रूप में ग्रहण किया।

'सालवती' के चरित्र की स्वाभिमानी तेजस्विता नगरवधू बनने पर नष्ट हो जाती है। नारी के अकिंचन अभिमान ने उसे जिस दयनीय दशा में ला पटका, उससे उद्धार पाने के निमित्त वह अभय के अनुग्रह की प्रार्थिनी बनती है—उस अभय की जिसे अभिमानवश उसने निदारुण अपमान दिया था। स्वतन्त्रता उसके लिए अभिशाप बन गई। अन्त में उसे अभयकुमार के अनुग्रह ने जीवन-दान दिया।

'सालवती' में उत्कृष्ट वातावरण-चित्रण है, नाटकीय कथोपकथन हैं, वस्तु का प्रसार भी है, यथेष्ट प्रभावात्मकता है, किन्तु इसकी विशेषता है एक सम्पूर्ण युग के सांस्कृतिक-चित्रण में। इसमें कहानी के उपकरणों के साथ वज्जिसंघ के प्राचीन जीवन-दर्शन का चित्रण एकात्म हो गया है। कहानीकार लक्ष्य-संधान में सफलता प्राप्त करता है। कथा-विकास की अवस्थितियाँ भी प्राप्त हैं। कहानी का अन्त नाटकीय प्रभावसृष्टि का कलात्मक उदाहरण है। शैली रमणीय है और विषय-गांभीर्य के अनुकूल। प्रसाद

की बौद्धिकता की अमिट छाप 'सालवती' में दृष्टिगत होती है। इसीलिए इस कहानी की शैली भावात्मक से अधिक विचारात्मक है।

'इन्द्रजाल' में प्रसाद की कथागत प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास निम्न-लिखित तीन प्रकार की कहानियों में द्रष्टव्य है—

(१) ऐतिहासिक

(२) प्रेममूलक

(३) यथार्थोन्मुख

ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण की पूर्णता के लिए संस्कृति-चित्रण का प्रयत्न कुछ कहानियों की विशेषता है, जैसे 'देवरथ' और 'सालवती'। प्रेमकथाएँ प्रारम्भिक रचनाओं के एकान्तिक प्रेम की अपेक्षा समाज और परिस्थितियों से प्रभावित हैं। 'गुंडा' में प्रेम पार्श्ववृत्ति है, प्रभावसृष्टि कथा के अन्य उपकरण करते हैं। 'छोटा जादूगर' और 'विराम चिन्ह' ऐसी कहानियों में यथार्थ-चित्रण की प्रवृत्ति शैली में भी परिव्याप्त है। प्रसाद की कहानी-कला का प्रौढ़त्व बीज, विकास और फलागम की सफल योजना और शैली-सौष्ठव में दृष्टिगत होता है। तात्पर्य यह है कि 'इन्द्रजाल' में प्रसाद की कहानी-कला का पूर्ण उन्मेष हुआ है।

कहानियों का वर्गीकरण

जयशंकर प्रसाद के पाँच कहानी-संग्रहों में उनकी सत्तर कहानियाँ संगृहित हैं। विषय और शैली की दृष्टि से इन कहानियों में यथेष्ट अन्तर है। इस भेद को दृष्टिगत करने पर उनकी कहानियों का वर्गीकरण आवश्यक है। वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी के क्षेत्र में उनकी देन विविधरूपसम्पन्न और विविधविषयसम्पन्न थी। प्रसाद की कहानियों को 'कवित्वपूर्ण वातावरण' की कहानियाँ कह कर कुछ आलोचकों ने अपने कर्तव्य की इति श्री समझ ली है। पर प्रसाद की सब कहानियाँ कवित्वपूर्ण वातावरण की सृष्टि नहीं करतीं। उन्होंने विषय और शैली की दृष्टि से कुछ ऐसी कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें उनकी यथार्थोन्मुख प्रतिभा का अच्छा विकास हुआ है। अतएव वर्गीकरण से प्रसाद की रचनात्मक प्रतिभा के रूप वैभिन्य का परिचय मिलता है और कहानी साहित्य को उनकी विशिष्ट देन का महत्व आँकने में सुविधा होती है।

प्रसाद की कहानियों का वर्गीकरण निम्नांकित है—

ऐतिहासिक कहानियाँ

प्रसाद अतीतजीवी साहित्यकार थे। इतिहास की ओर आकर्षण उनकी मूलवृत्तियों में प्रधान है। उनके सब कहानी-संग्रहों में ऐतिहासिक कहानियाँ प्राप्त हैं। प्रथम कहानी-संग्रह 'छाया' में सर्वाधिक कहानियाँ ऐतिहासिक हैं। पर 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की ऐतिहासिक कहानियों में उनकी कला का सामान्य विकास हुआ है। इन कहानियों की प्रभावशक्ति भी सामान्य

है। 'आकाशदीप' 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' की ऐतिहासिक कहानियाँ शैलीविधान और प्रभावात्मकता की दृष्टि से प्रसाद की कहानी कला का प्रौढ़ रूप प्रस्तुत करती हैं।

'प्रसाद' की ऐतिहासिक कहानियाँ अठारह हैं—तानसेन, शरणागत, सिकन्दर की शपथ, चित्तौर उद्धार, अशोक, गुलाम, जहाँनारा, चक्रवर्ती का स्तम्भ, आकाशदीप, ममता, स्वर्ण के खंडहर में, दासी, व्रत-भंग, पुरस्कार, नूरी, गुंडा, देवरथ और सालवती। इनमें कुछ कहानियाँ ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित हैं और कुछ में पृष्टभूमि मात्र ऐतिहासिक हैं। उदाहरण के लिए 'अशोक' 'चित्तौर उद्धार' 'जहाँनारा' में ऐतिहासिकता अधिक है और 'पुरस्कार' 'आकाशदीप' आदि में ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर सजीव पात्रों की प्रेमकथाएँ उपस्थित की गई हैं। वस्तुतः प्रसाद स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार हैं। उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास इन ऐतिहासिक प्रेम-रोमांसों में हुआ है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ भी यही प्रेम कहानियाँ हैं। इनमें इतिहास का बन्धन कम है, अतएव प्रसाद की कवि-जन्य अनुभूति ने मार्मिक कथा-विधान किया है। उनकी रोमान्टिक-प्रतिभा का पूर्णोन्मेष ऐतिहासिक प्रेमकथाओं में दृष्टिगत होता है।

जयशंकर प्रसाद को ऐतिहासिक कहानियों में बौद्धकाल से लेकर १८५७ के सिपाही-विद्रोहकाल तक को अपनाया गया है। वस्तुतः प्रसाद भारतीय इतिहास के तीन काल को अपनी विषय-वस्तु से सम्बद्ध करते हैं—बौद्धकाल, मुसलिमकाल और गदरकाल। बौद्धकाल से सम्बन्धित कहानियों में मुख्य हैं—'अशोक' 'पुरस्कार' और 'सालवती'। 'अशोक' में ऐतिहासिक-वस्तु सर्वाधिक है। 'पुरस्कार' कलात्मक प्रेमकथा है जिसकी पृष्टभूमि मात्र ऐतिहासिक है, पर युग-चित्र अंकित करने में सफल है। 'सालवती' प्रेम-कथाओं से अधिक गरिमा रखती है। इसमें बौद्धयुग के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक वातावरण का वैभवपूर्ण चित्रण है। प्रसाद का अभिजात्य, सांस्कृतिक निष्ठा, कला भंगिमा, बौद्धिक-ऐश्वर्य और भाषा-सौष्ठव का 'सालवती' में अपूर्व समन्वय

हुआ है।

ऐतिहासिक कहानियों में, बौद्धकाल के बाद मुसलिमकाल को 'प्रसाद' अपनी कहानी-कला का विषय बनाते हैं। मुसलिमकाल की कहानियों में उल्लेख्य हैं—चित्तौर उद्धार, गुलाम, जहाँनारा, ममता, स्वर्ग के खंडहर में और नूरी। 'चित्तौर उद्धार' में राजपूत-कथा वर्णित है। इसमें राणा हम्मीर द्वारा चित्तौड़-गढ़ अधिकृत करने की कहानी है। यह प्रसाद की प्रारम्भिक कृतियों में है, अतएव कलात्मकता के वैसे दर्शन नहीं होते जैसे 'ममता' और 'नूरी' ऐसी प्रौढ़ कहानियों में। 'स्वर्ग के खंडहर में' प्रसाद की स्वच्छन्दवादिता ने कवित्वपूर्ण प्रभावसृष्टि की है। इसमें वातावरण प्रधान है। 'जहाँनारा' और 'गुलाम' 'छाया' में संगृहित प्रारम्भिक ऐतिहासिक कहानियाँ हैं जिनमें मुसलमान शासकों की जीवन यात्रा के दो करुण चित्र मिलते हैं—शाहजहाँ और शाहआलम संबंधी। अन्य मुसलिम कहानियों की अपेक्षा इनमें ऐतिहासिकता अधिक है पर ये अच्छी कला-कृति नहीं कही जा सकतीं। हाँ, प्रसाद की नाटकीय कथा-शैली के विकास-अध्ययन की दृष्टि से इनका महत्व है। 'ममता' में नारी की त्यागमयी करुणामूर्ति की मार्मिक झलक मिलती है। 'नूरी' का संबंध अकबर के शासन काल से है। यह एक दुखान्त प्रेमकथा है। वस्तुतः इन मुसलिमकालीन कहानियों में भी ऐतिहासिकता से अधिक प्रसाद की अतीतजीवी कल्पना ने चित्रमयी पृष्ठभूमि पर मनुष्य की अन्तर्व्यापी वेदना-व्यथा, हर्ष-उल्लास, क्रोध-घृणा आदि चिरन्तन वृत्तियों का उद्घाटन किया है।

१८५७ के सिपाही-विद्रोहकालीन कहानियों में 'शरणागत' है। इसमें कहानी-कला नगण्य है। यह वस्तु-विषय की दृष्टि से उल्लेख्य है, प्रभाव-सृष्टि में असफल। 'गुंडा' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में परिगणित है। इसमें ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में काशी के जीवन का सुन्दर चित्रण है। सन् १७८१ के आस-पास की ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर इसकी कथा का निर्माण हुआ है। नन्हकूसिंह के चरित्रांकन

और काशी की राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रण में प्रसाद को भरपूर सफलता मिली है।

'प्रतिध्वनि' की 'चक्रवर्ती का स्तम्भ' नामक ऐतिहासिक कहानी में प्रसाद मुसलिम-काल और मौर्य-काल का तुलनात्मक चित्रण करते हैं। मुसलमानों की हिंसात्मक कट्टरता और अशोक की अहिंसा-करुणा की चर्चा करता हुआ वृद्ध धर्मरक्षित इस्लामी सैनिकों से कहता है—'वह भी सम्राट था जिसने इस स्तम्भ पर समस्त जीवों के प्रति दया करने की आज्ञा खुदवा दी है। क्या तुम भी देश विजय करके सम्राट हुआ चाहते हो? तब दया क्यों नहीं करते।' प्रसाद प्रारम्भ में बौद्धों के करुणावाद से अत्यधिक प्रभावित थे। इस तुलनात्मक ऐतिहासिक कहानी में उसकी झलक भी मिल जाती है।

प्रेममूलक कहानियाँ

प्रसाद की द्वितीय मुख्य वृत्ति है—प्रेम। उनकी ऐतिहासिक कहानियों में भी प्रेमवृत्ति उल्लेख्य है। उदाहरण के लिए 'तानसेन' कहानी लीजिए *जिसमें 'प्रेम' को 'धर्म' की संज्ञा दी गई है।* 'नूरी' और 'पुरस्कार' में देश-प्रेम को कहानी का विषय बनाया गया है, पर अधिकाँश कहानियों ने नर-नारी प्रेम को अपना मुख्य विषय बनाया है। इन्हें विशुद्ध प्रेम कहानियाँ कहना चाहिए। 'छाया' 'आकाशदीप' 'आँधी' में मुख्यतः और 'इन्द्रजाल' में गौणरूप से ये कहानियाँ संग्रहित हैं—चन्दा, रसिया बालम, मदन मृणालिनी, सुनहला साँप, हिमालय का पथिक, देवदासी, समुद्र संतरण, प्रणय चिन्ह, रूप की छाया, चूड़ीवाली, बिसाती, आँधी, ग्राम-गीत, इन्द्रजाल और चित्रवाले पत्थर। इन कहानियों में स्त्री-पुरुष के प्रेम का चित्रांकन है। पुरुष और नारी के प्रेम का अन्त विरह में होता है या मिलन में। सफल और असफल प्रेम की ये कहानियाँ प्रसाद-साहित्य में विशेष स्थान रखती हैं। इनमें कवि प्रसाद की तरल भावुकता ने अनेक मार्मिक चित्रों की झलक दिखाई है। सफल प्रेम की अपेक्षा असफल प्रेम-कथाएँ अधिक हैं। इनमें कहानीकार को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है।

'प्रसाद' की सृजनात्मक प्रतिभा और स्वच्छन्दतावादी कला का इन कहानियों में समन्वय हुआ है। सफल प्रेम-कथाओं में उल्लेखनीय हैं—सुनहला साँप, समुद्र संतरण, चूड़ीवाली और इन्द्रजाल। असफल प्रेम की मर्म-स्पर्शी कहानियाँ 'देवदासी' 'विसाती' और 'आँधी' हैं। 'विसाती' में कविकृत भावसृष्टि है। 'आँधी' में लैला की अन्तरव्यापी निगूढ़ वेदना का कहानीकार ने बड़ी सहानुभूति से चित्रण किया है। कुछ प्रेम कहानियों को छायावादी वर्णन-पद्धति द्वारा प्रसाद ने विशिष्टप्रभावसम्पन्न बनाया है। इन कहानियों में 'हिमालय का पथिक' और 'प्रणय चिन्ह' उल्लेख्य हैं। इनमें उनकी कवि-प्रतिभा की अमिट छाप है। 'छाया' की प्रारम्भिक प्रेमकथा 'रसिया बालम' गद्य में एक खण्ड-काव्य के समान है। यह फारसी के प्रेमाख्यानों के निकट है। प्रसाद की प्रेममूलक कहानियों में प्रेम की अनेक भंगिमाएँ मिलती हैं। उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त 'रूप की छाया' 'चन्दा' और 'मदन मृणालिनी' में विविध भंगिमाएँ दृष्टिगत होती हैं। 'रूप की छाया' में नारी पुरुष के अन्तरालवर्ती आकर्षण को जागृत करने में प्रयत्नशील है, 'चन्दा' में प्रतिशोध द्वारा प्रेम-निष्ठा का परिचय दिया गया है और 'मदन मृणालिनी' में त्यागमय प्रेम का चित्रण है। प्रसाद की ये कहानियाँ प्रेम के अनेक पक्षों की कलात्मक झलक दिखाती हैं।

भावात्मक कहानियाँ

इस वर्ग की अधिकांश कहानियाँ 'प्रतिध्वनि' में मिलती हैं—अघोरी का मोह, पाप की पराजय, करुणा की विजय, दुखिया, कलावती की शिक्षा और प्रतिमा। 'आकाशदीप' में भी कुछ भावात्मक कहानियाँ प्राप्त हैं—भिखारिन, प्रतिध्वनि और बनजारा। इन कहानियों में कथातत्व अप्रधान है, मुख्य है भावुकतापूर्ण कथा-वर्णन। 'भिखारिन' 'प्रतिध्वनि' और 'बनजारा' में तो कहानियों की रूप रेखा प्राप्त भी है पर 'अघोरी का मोह' आदि प्रारम्भिक कहानियों में भावना की भंगिमा मात्र है। अतिभावुकता के कारण शैली में अस्पष्टता आ गई है। इससे कुछ कहानियों का वर्ग

निर्णय कठिन हो जाता है। 'वनजारा' ऐसी ही कहानी है जिसे प्रेम-कथा भी कहा जा सकता है। इस दृष्टि से उसे प्रेममूलक कहानियों के वर्ग में रखना उचित था किन्तु भावात्मकता के आधिक्य के कारण उसे भावात्मक कहानियों मे परिगणित किया गया है। कुछ कहानियों में गद्यगीत समाविष्ट हैं—जैसे प्रतिमा। इन कहानियों में प्रसाद की एक विशेष प्रकार की कला के दर्शन अवश्य होते हैं, पर अस्पष्टता के कारण कहानियाँ में स्थायी प्रभाव नहीं है। वस्तुतः इनमें प्रसाद का प्रारम्भिक कवि अधिक है, कहानीकार कम।

रहस्यवादी कहानियाँ

प्रसाद छायावादी-रहस्यवादी कवि थे। उनकी कुछ कहानियों में उनकी रहस्यमुखी-प्रवृत्ति की छाप स्पष्ट है। भावुकता के अतिरेक से वे कुछ अस्पष्ट हो गई हैं और उनको विश्लेषणात्मक ढँग से समझना कठिन हो जाता है। 'प्रतिध्वनि' और 'आकाशदीप' संग्रहों में रहस्यवादी कहानियाँ संग्रहित हैं। 'प्रतिध्वनि' की 'प्रसाद' रहस्यवादी पद्धति का गद्यगीत है। इसे कहानियों में परिगणित नहीं करना चाहिए। 'उस पार का योगी' में रहस्यात्मक-प्रवृत्ति अधिक नहीं, पर अस्पष्टता अधिक है। 'आकाशदीप' की 'रमला' प्रसाद की अच्छी रहस्यवादी कहानियों में है। इसमें प्रसाद की भावुकता और कल्पना स्वप्निल सौंदर्य की सृष्टि करती है। रहस्यवादी कहानियाँ भावात्मक कहानियों की कला से मिलती जुलती हैं। ये प्रभाव से अधिक वातावरण सृष्टि में सफल हैं।

यथार्थोन्मुख कहानियाँ

'प्रतिध्वनि' और 'आकाशदीप' को छोड़ कर प्रसाद के अन्य कहानी संग्रहों में यथार्थोन्मुख कहानियाँ प्राप्त हैं। 'छाया' में ग्राम, 'आँधी' में घीसू, वेड़ी, 'इन्द्रजाल' में सलीम, छोटा जादूगर, विराम चिन्ह, सन्देह और भीख में कहानियाँ प्रसाद की यथार्थोन्मुख कहानियाँ हैं। यह विचार्य विषय है कि स्वच्छन्दतावादी प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' यथार्थोन्मुख कहानी है। यह सन् १९११ में 'इन्दु' में प्रकाशित

हुई थी। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भाववादी जयशंकर प्रसाद प्रारम्भ से ही जीवन के यथार्थ पक्ष की ओर भी आकृष्ट थे। उनकी यथार्थ-चित्रण कला का विकास छोटा जादूगर, विराम चिन्ह और बेड़ी में द्रष्टव्य है। 'छोटा जादूगर' उनकी यथार्थोन्मुख कहानियों में सर्वश्रेष्ठ है। यह अपरिमेय प्रभावशक्ति से सम्पन्न है। 'विराम चिन्ह' में सामयिकता का प्रभाव दृष्टिगत होता है। 'बेड़ी' दरिद्र अन्धे की विवशता का मूर्त रूप खड़ा कर देती है। लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात—प्रसाद की यथार्थोन्मुख कहानी-कला का मर्म है। इन कहानियों में प्रसाद अपनी मूलवृत्ति से पूर्णतया असंपृक्त नहीं हो पाये हैं, तथापि विषय के साथ ही इनकी शैली भी यथार्थोन्मुख है। उसमें काव्यात्मकता और अलंकरण की प्रवृत्ति बहुत कम है। प्रसाद की भावप्रधान अलंकृत गद्यशैली के विपरीत इसमें यथार्थोन्मुख शैली को अपनाने का प्रयत्न स्पष्ट लक्षित होता है। सच यह है कि प्रसाद की प्रतिभा न्यूनाधिक में जीवन और कला के अनेक पक्षों का संस्पर्श करती है। ये यथार्थोन्मुख कहानियाँ उनकी विविधरूपसम्पन्न सृजनात्मक क्षमता की साक्षी हैं। ऐतिहासिक एवं प्रेम-कथाओं में उनकी स्वच्छन्दवादी कला का चरम-विकास हुआ है और यथार्थोन्मुख कहानियों में जीवन की लघुता का करुणामय चित्रांकन ध्यान आकृष्ट करता है।

समस्यामूलक कहानियाँ

प्रसाद ने केवल दो समस्यामूलक कहानियाँ लिखी हैं। 'प्रतिध्वनि' की पत्थर की पुकार और 'आँधी' की नीरा। 'पत्थर की पुकार' में साहित्य और कला की समस्याएँ उठाई गई हैं। इसमें प्रसाद साहित्यकार के करुणा सम्बन्धी सद्भाव से अधिक दुःखी हृदय के नीरव क्रन्दन की वास्तविक करुणा की अनुभूति का आवाहन करते हैं। साहित्य और कला के प्रति प्रसाद का दृष्टिकोण समझने में यह कहानी विशेष सहायक है। 'नीरा' की समस्या अपेक्षाकृत स्थूल है—विश्वास और अविश्वास की, आस्तिकता और नास्तिकता की समस्या। इस समस्या का समाधान कहानी-

कार ने प्रस्तुत किया है—मनुष्योचित सहृदयता द्वारा। 'नीरा' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ समस्यामूलक कहानी है। समस्यामूलक कहानियों की रचना में भाववादी कथाकार से विश्लेषणवादी कथाकार को अधिक सफलता मिलती है। प्रेमचन्द की अनेक समस्यामूलक कहानियाँ उनकी विश्लेषणवादी प्रतिभा और शैली की मौलिक देन हैं। प्रसाद मूलतः भाववादी कथाकार हैं। इसीलिए समस्यामूलक कहानियों के प्रति उनका झुकाव बहुत कम है।

प्रतीकात्मक कहानियाँ

प्रतीकात्मक कहानियाँ 'प्रतिध्वनि' और 'आकाशदीप' में संग्रहित हैं। इन कहानियों में 'प्रलय' 'ज्योतिष्मती' और 'कला' की गणना की जाती है। 'प्रलय' में प्रसाद ने 'शैवागमों के शिवशक्ति के प्रलयांतर्गत समागम को ही प्रतीक के रूप में उपस्थित किया है। 'ज्योतिष्मती' में सच्चे प्रेम भाव की व्याख्या है। प्रेम हमें नई दृष्टि प्रदान करता है परन्तु यह दृष्टि निश्चल प्रेम से ही आ सकती है। वासना के स्पर्श से ही प्रेम की ज्योतिष्मती लता मुरझा जाती है।' 'कला' में उसके दो पक्ष—रूप और रस पर विचार किया गया है। प्रसाद ने इसमें रूप पर रस की विजय अंकित की है। 'कला' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ प्रतीकात्मक कहानी है।

प्रागैतिहासिक कहानियाँ

'चित्र मन्दिर' में प्रागैतिहासिक युग के जीवन की झलक मिलती है। रायकृष्णदास की कहानी 'अन्तःपुर का आरम्भ' के साथ इसकी तुलना की जाती है। प्रागैतिहासिक जीवन पर प्रसाद ने केवल 'चित्र मन्दिर' की रचना की है।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ बहुत कम लिखी हैं। मनोवैज्ञानिक कहानियों में चरित्र की झलक दिखाई जाती है और मनोवृत्ति-विशेष का चित्रण होता है। इस दृष्टि से परिवर्तन, गूदड़ साईं, गुदड़ी में लाल, मधुआ कहानियाँ उल्लेख्य हैं। 'गूदड़ साईं' में साईं की चरित्रगत विशेषता—बाल-प्रेम का उद्घाटन हुआ है। वह एक 'टिपिकल' चरित्र है।

'गुदड़ी में लाल' कहानी बुढ़िया की स्वाभिमानी मनोवृत्ति का चित्रण करती है। 'मधुआ' और 'परिवर्तन' अच्छी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं। 'मधुआ' में शराबी के चरित्र-परिवर्तन की कथा है और 'परिवर्तन' मनुष्य पर अन्तर्भाव का प्रभाव अंकित करती है। इसमें मनोवैज्ञानिक कहानी के कलात्मक रूप के दर्शन होते हैं। पर प्रसाद ने प्रेमचन्द की भाँति चरित्र-प्रधान मनोवैज्ञानिक कहानियाँ नहीं लिखी हैं। 'गुंडा' अवश्य चरित्र प्रधान कहानी है, पर इसमें ऐतिहासिक वातावरण और काल-परिस्थिति-चित्रण चरित्र से कम प्रमुख नहीं हैं। इसीलिये इसे ऐतिहासिक कहानियों के वर्ग में रखा गया है।

विविध कहानियाँ

कुछ कहानियाँ ऐसी हैं कि उन्हें किसी वर्ग में नहीं रखा जा सकता। कहानियों के विषय की अस्पष्टता और लक्ष्यभ्रान्ति का आधिक्य वर्ग-निर्णय में बाधक है। सहयोग, खंडहर की लिपि, अनबोला, विजया, अमिट स्मृति, वैरागी और अपराधी ऐसी ही कहानियाँ हैं जिन्हें वर्गबद्ध करना उचित नहीं समझा गया। स्वच्छन्दतावादी कथाकार की कला सर्वदा वर्गविधिवत् नहीं हुआ करती। अतएव यदि उसकी कुछ कहानियाँ वर्ग-बद्ध नहीं की जा सकतीं तो न सही। पर इससे उनका कलात्मक सौंदर्य कम नहीं होता। 'अपराधी' अच्छी कहानी है किन्तु उसे प्रेम-कथा कहा जाय या अपराध-कथा? 'वैरागी' में प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी प्रतिभा ने मायाजाल रचा है। 'अमिट स्मृति' और 'अनबोला' यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति की रचनाएँ हैं, पर उस वर्ग में ठीक-ठीक नहीं बैठतीं। 'विजया' में आदर्शवादी प्रभाव है अवश्य, पर उसे आदर्शवादी कहानियों के वर्ग में रखना कठिन है क्योंकि वह सुनिश्चित आदर्शों का प्रत्याख्यान करती है। 'सहयोग' दाम्पत्य-प्रेम से सम्बन्धित है। 'खंडहर की लिपि' में काव्यात्मक रेखा-चित्र अधिक है, कहानी कम।

यह जयशंकर प्रसाद की सत्तर कहानियों का वर्गीकरण है। इससे यह सिद्ध होता है कि कहानी के क्षेत्र में प्रसाद की देन विविधरूपा थी।

इन कहानियों में उनका कवि और नाट्यकार उनके कथाकार से पृथक नहीं है। कहानियों में उनकी कवि-प्रतिभा और नाट्य-प्रतिभा का समुचित योगदान है। प्रसाद की स्वच्छन्दवादिता उनकी कहानियों के अनेक स्थलों में अभूतपूर्व सौंदर्य-सृष्टि करती है। एक भाव की अनेक भंगिमाएँ प्रसाद की कहानियों की विशेषता है। उनकी प्रेममूलक कहानियों में प्रेम की अनेक भंगिमाएँ दृष्टिगत होती हैं। प्रसाद ने चारित्रिक और मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व से भिन्न भावात्मक द्वन्द्व-चित्रण किया है। उनके ऐतिहासिक प्रेम-रोमांसों में यह स्पष्ट अंकित है। ये भाव द्वन्द्व-चित्र बड़े मर्मस्पर्शी हैं। इन कलात्मक भावपूर्ण कहानियों के साथ ही प्रसाद ने यथार्थ जीवन के चित्रांकन की अद्‌भुत क्षमता 'बेड़ी' 'छोटा जादूगर' इत्यादि कहानियों में दिखाई है। प्रसाद की यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति प्रेमचन्द की प्रवृत्ति से भिन्न समझी जानी चाहिए। प्रसाद का यथार्थ चित्रण करुणामूलक है। वह प्रेमचन्द के संघर्षनिष्ठ यथार्थवादी जीवन-चित्रण से सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः प्रसाद की यथार्थोन्मुख कहानियाँ उनकी स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक-प्रतिभा से पूर्णतया असम्पृक्त नहीं हैं। वे शैली और विषय में भिन्न अवश्य हैं पर दृष्टिकोण में नवीन पथ का निर्देश नहीं करतीं। इसीलिए 'विराम चिन्ह' में संघर्ष की परिस्थिति को करुणा की परिस्थिति में परिवर्तित किया गया है। तथापि इन कहानियों में प्रसाद ने जीवन की लघुता को अपनी सृष्टि-सीमा में अंगीकृत किया है। साहित्य जीवन की महानता और लघुता को साथ लेकर चलता है। वह सम्पूर्ण जीवन की व्याख्या करता है। प्रसाद की कहानियाँ जहाँ कल्पना के महत् चित्र प्रस्तुत करती हैं, वहीं वे जीवन की लघुता पर मानवीय दृष्टि डालना नहीं भूलतीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कथाकार प्रसाद ने जीवन की व्यापक चित्रपटी पर अपनी विधायक-प्रतिभा का प्रयोग किया है

शैली-प्रयोग

कहानी लिखने की तीन शैलियाँ प्रचलित हैं—

(१) कथा-साहित्य में सबसे प्रथम-प्रचलित शैली, ऐतिहासिक शैली कही जाती है जिसमें कहानी-लेखक एक इतिहासकार की भाँति तटस्थ-सा होकर अन्य पुरुष की भाँति कहानी का वर्णन करता है।

(२) कहानियों की दूसरी मुख्य शैली चरित्र-शैली है, जिसमें कहानी का पात्र-विशेष सम्पूर्ण कहानी उत्तम पुरुष (मैं) में कहता है।

(३) कहानी कहने की तीसरी शैली पत्र-शैली है जिसमें सारी कहानी पत्रों द्वारा कही जाती है।

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में उपर्युक्त शैलियों का प्रयोग किया गया है। यही नहीं प्रसाद ने हिन्दी कहानियों के शैली-विकास में भी महत्वपूर्ण योग दिया है। उन्होंने प्रचलित शैली को ग्रहण करते हुए नवीन उद्भावना द्वारा उसे और भी प्रभावसम्पन्न किया। उदाहरण के लिए ऐतिहासिक शैली लीजिए। प्रसाद ने प्रायः सब मुख्य कहानियाँ ऐतिहासिक शैली में लिखी हैं। परम्परागत शैली में नाटकीयता का प्रवेश कराकर प्रसाद ने ऐतिहासिक शैली की नवीन उद्भावना—नाटकीय शैली को जन्म दिया। 'प्रलय' कहानी तो सोलहों आने नाटकीय शैली में लिखी गई है। उसकी वस्तु, पात्र, कथोपकथन, परिस्थिति और प्रभाव सब नाटकीय हैं। हिन्दी में बहुत कम कहानियाँ इतनी नाटकीय प्रभावशक्ति की सम्पन्नता से विभूषित हैं। 'पुरस्कार' के कथोपकथन और प्रभावात्मक

अन्त में यथेष्ट नाटकीयता है, पर नाटकीय कथा-शैली का यह प्रयोग द्रष्टव्य है—

'बन्दी !'

'क्या है ? सोने दो।'

'मुक्त होना चाहते हो ?'

'अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।'

'फिर अवसर न मिलेगा।'

'बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डाल कर कोई शीत से मुक्त करता।'

'आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।'

'तो क्या तुम भी बन्दी हो ?'

'हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।'

'शस्त्र मिलेगा ?'

'मिल जायगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?'

'हाँ।'

— 'आकाशदीप'

इस कहानी का प्रारम्भ वार्तालाप से हुआ है। कथोपकथन के नाटकीय प्रयोग का कौशल नाटककार का है। प्रसाद एक सफल नाटककार थे, इसीलिए उन्होंने कहानी लेखन-शैली में संभाषणों का महत्व समझा था और ऐतिहासिक शैली में इनके प्रचुर-प्रयोग द्वारा नाटकीयता का प्रवेश कराया। 'संभाषण-कला और नाटकीय सौंदर्य के सम्मिश्रण से ऐतिहासिक शैली का अपूर्व विकास हुआ।' इसमें प्रसाद का योगदान सर्वाधिक उल्लेख्य है। उन्होंने नाटकीय-तत्व के समावेश से ऐतिहासिक शैली की नाटकीय शक्ति का विकास किया जिसमें परम्परागत ऐतिहासिक शैली से अधिक प्रभावात्मकता है। कहानियों के शैली-प्रयोग में प्रसाद की यह महत्वपूर्ण देन इधर आलोचकों की दृष्टि आकर्षित करने

लगी है।

कहानियों की चरित्र-शैली का प्रयोग, जिसमें कहानी का एक पात्र सम्पूर्ण कथा उत्तम पुरुष में कहता है, भी प्रसाद ने किया है। 'आँधी' 'ग्राम गीत' 'वेड़ी' 'चित्रवाले पत्थर' 'छोटा जादूगर' कहानियाँ चरित्र-शैली में लिखी गई हैं। चरित्र-शैली में प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'आँधी' है। 'आँधी' में वर्णन करने वाले पात्र की कहानी मुख्य नहीं है, प्रमुख कहानी है लैला के प्रेम की। पर कहानीकार ने बड़े कौशल से दोनों को एकात्म किया है। चरित्र-शैली में एक दोष होता है कि कथा कहने वाले पात्र की तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूति का उल्लेख हो जाता है पर अन्य पात्रों के विषय में यह सुविधा नहीं रहती। पर 'आँधी' में लैला के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण कहानीकार ने बड़ी सफलता से किया है। इस शैली की कहानियों में जयशंकर प्रसाद ने दो प्रकार के प्रयोग किए हैं—

(१) जिसमें वर्णन करने वाला पात्र कथा-विकास में योग देता है, जैसे 'आँधी' में।

(२) जिसमें वर्णन करने वाला पात्र दर्शक मात्र होता है। उसने जो देखा-सुना है, वही कह रहा है। जैसे 'चित्रवाले पत्थर' एवं 'ग्राम गीत' में।

इनमें प्रसाद को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। जिन कहानियों में एक ही मुख्य चरित्र है, अन्य चरित्र गौण हैं, उनके लिए यह शैली अत्यन्त उपयुक्त है। 'वेड़ी' और 'छोटा जादूगर' कहानियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

प्रसाद ने कहानियों की पत्र-शैली में केवल एक कहानी 'देवदासी' लिखी है। इसमें सात पत्रों द्वारा कथा-निर्माण किया गया है। कहानीकार के लिए इस शैली में प्रवाहपूर्ण कथा-विकास दुःसाध्य हो जाता है। अलग अलग पत्रों में वह खण्डित-सा बोध होता है। प्रसाद को भी इसमें सामान्य सफलता ही प्राप्त हुई है। वस्तुतः पत्र-शैली ही त्रुटिपूर्ण है

इसमें कहानी लिखना बहुत कम लेखक पसन्द करते हैं। प्रसाद ने भी प्रयोग की दृष्टि से 'देवदासी' लिखी है, इस शैली के प्रति उनका आग्रह नहीं है।

तीनों शैलियों में प्रसाद को सर्वाधिक सफलता ऐतिहासिक शैली के प्रयोग में मिली है। उनकी वातावरण प्रधान रोमान्टिक-कहानियों के लिए यह शैली ही उपयुक्त थी। इसीलिए उन्होंने अपनी सत्तर कहानियों में से चौंसठ कहानियाँ इस शैली में लिखी हैं। संभाषण-कला के सन्निवेश और नाटकीय-परिस्थितियों की सृष्टि द्वारा प्रसाद ने इस शैली को नाटकीय प्रभाव-सौंदर्य से अनुप्राणित किया।

उपसंहार

जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक-कृतित्व हिन्दी में समादृत है। उनका सम्पूर्ण साहित्य उनकी प्रतिभा और अनुभूति का समन्वय है। आधुनिक युग का सूत्रपात करने वाले साहित्यकारों में प्रसाद का स्थान जैसा महत्वपूर्ण है, वैसा ही हिन्दी-साहित्य की बहुमुखी उन्नति में उनका सक्रिय सहयोग। उन्होंने आधुनिक साहित्य में कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और मौलिक निबन्धों की अनुपम सृष्टि की। स्थायी-साहित्य को प्रसाद की देन निर्विवाद है। अपनी अल्पायु में हिन्दी के विविध अंगों की पुष्टि का जैसा प्रयत्न प्रसाद ने किया, वैसा आज तक कोई नहीं कर सका है। कविता के क्षेत्र में वह छायावाद के प्रवर्तक हैं; गीति-काव्य की कोमल अनुभूति और स्वच्छन्दतावादी-कला के अदृष्टपूर्व कवि हैं। नाट्य-क्षेत्र में प्राचीन और नवीन कला के समन्वय का स्तुत्य प्रयास उनकी कृतियों में प्राप्य है। कथा-साहित्य को उनकी विशिष्ट देन सर्वमान्य है और वातावरणप्रधान ऐतिहासिक-कहानियों में वह प्रेमचन्द को भी पीछे छोड़ जाते हैं। निःसन्देह प्रसाद अपने युग के अप्रतिम साहित्यकार थे। महिमा में केवल प्रेमचन्द का नाम उनके सम्मुख टिक सका है।

प्रसाद का कथा-वाङ्मय संख्या में अल्प है। उनकी कीर्ति का आधार उनके ढाई उपन्यास और सत्तर कहानियाँ हैं। यह अधिक नहीं है, पर इतने में ही प्रसाद ने सृजनात्मक-कला की विविध भंगिमाएँ

प्रस्तुत कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा की अमिट छाप लगा दी है। 'कंकाल' में यथार्थोन्मुख साहित्य-परम्परा का परिचय मिलता है, 'तितली' में आदर्शवाद और सुधारनिष्ठा ध्यान आकृष्ट करती है तथा 'इरावती' में ऐतिहासिक विषय-वस्तु के साथ आत्म और अनात्मवाद का संघर्ष चित्रित है। कहानियों में जहाँ एक ओर अतीत की झलक और भाव-विशिष्ट काल्पनिकता की सौंदर्य-सृष्टि मिलती है, वहीं दूसरी ओर जीवन की वास्तविकता का व्यञ्जनात्मक-चित्रण उपलब्ध है। इससे उनकी इतविषयक कहानियों में प्रभूत संवेदन-शक्ति संचित हुई है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि व्याख्या प्रसाद की प्रवृत्ति नहीं है, उनकी प्रवृत्ति व्यञ्जना है। कथा-साहित्य में उनकी यह विशेषता अपरिमेय संवेदन-शक्ति उज्जीवित करती है।

अभिनव कथा-परम्परा के प्रवर्तन की दृष्टि से भी प्रसाद का महत्व स्वीकार किया गया है। साधारण उपन्यास-कहानियों की भाँति प्रसाद का कथा-साहित्य केवल वस्तु-प्रसार में ही कृतकृत्य नहीं हुआ है। 'प्रसाद ने केवल वस्तु का प्रसार नहीं किया; अपितु एक विशेष मनोभाव, कहीं मानव-चरित्र की एक विशेष धारा और कहीं केवल आकस्मिक घटनाओं से उत्पन्न परिस्थिति में बहते जीवन को अपना लेखनी से उठाया है। साहित्य जिस तीव्र अनुभूति का भूखा है, प्रसाद ने कथा-साहित्य में उसकी अपने हृदय के बड़े कोमल उपकरणों से तृप्ति की है।' उनकी प्रतिभा ने जिस कथा-वाङ्मय की सृष्टि की उसमें रस और मर्म है, वह केवल बहिर्जगत से ही सम्बद्ध नहीं अपितु हृदय की उन भावनाओं पर प्रकाश डालता है जिनकी अनुभूति मनुष्य को हुआ करती है। उनकी यह प्रवृत्ति भावविशिष्ट कथाकारों में उनका शीर्ष-स्थान निर्धारित करती है।

आगामी प्रकाशन

नाट्यकार जयशंकर प्रसाद

आगामी प्रकाशन

नाट्यकार जयशंकर प्रसाद